सलेमी को दादा सुग्गन का गुस्सा वाजिब लगा, ''सई बात है घर-गिरस्ती भी जरूरी है... दादा, मैं समझा दूँगो काका मँगतू ए।''

दादा सुग्गन के पास से सलेमी जब वापस बाज़ार की छतों पर आया, तो देखा मँगतू फिर वहीं है जहाँ से उसे छोरे-छापरे कंधों पर उचककर ले गए थे।

और उस तीज का वर्णन करते वक्त तो सलेमी रोमांचित हो उठता है, जिस तीज की अब सिर्फ़ या तो पन्नियाँ बची हैं या फिर छोटी-छोटी खपच्चियाँ। उसी के बाद से तो सलेमी अपने उस्ताद यानी मँगतू की अँगुलियों की जादू और उसकी दरियादिली का कायल है।

हुआ दर असल यह था कि उस तीज को नगीना के पेच साकरस गाँव के साथ बँध गए थे। पेच बँधते समय यह शर्त भी लगा दी गई कि जिसकी भी पतंग कटेगी उसे फ़ी पतंग एक सौ एक रुपए काटने वाले को शर्त के रूप में देने होंगे।

बस, फिर क्या था पूरा नगीना युद्ध स्तर पर पन्नियों और खपच्चियों में जुट गया। पाटोड़ में दखनी कीकरों से घिरे पत्थरों पर माँजे के लिए शीशा पिसना शुरू हो गया। जितनी भी लालटेन की चटखी हुई चिमनियाँ और पतले शीशों से बनी बोतलें जिसके पास थीं, पूरी उदारता के साथ मँगतू के पास आनी शुरू हो गई। बड़ी-बड़ी पतंगों के लिए मुलायम बाँसों को खोज-खोज कर लाया जाने लगा। मँगतू की दिन-रात सेवा की जाने लगी। उसकी सेवा के लिए विशेष रूप से सलेमी को नियुक्त किया गया क्योंकि सबको पता है कि सलेमी से बेहतर मँगतू का कोई सहयोगी हो ही नहीं सकता।

पूरे नगीना की निगाहें एक बार फिर मँगतू पर आ टिकीं।

पूरे नगीना को अगर उम्मीद थी तो केवल मँगतू से क्योंकि एक सौ एक रुपए की शर्त से बड़ी है गाँव की नाक।

पूरन मास्टर को विशेष रूप से दिल्ली भेजा गया कि वह सदर बाज़ार से ज़ंजीर छाप रील और बढ़िया पतंगी कागज़ लेकर आए। जुम्मा मनिहार ने अपना ताँगा मुफ़्त में बड़कली से नगीना के लिए लगा दिया ताकि तीज के दिन लड़ने वाले पेचों के लिए किसी ज़रूरी काम से जिसे भी आना-जाना हो, वह मज़े से आए-जाए।

सारे नगीना के लिए एक चुनौती सामने थी जो तीज के निकट आते-आते और बड़ी होती जा रही थी। इस तरह जैसे-जैसे तीज नज़दीक आने लगी वैसे-वैसे नगीना में गहमागहमी और व्यस्तताएँ बढ़ने लगीं। बुग्गल चक्कीवाला, अतर खाँ और लल्लू चमार को यह काम सौंपा गया कि वे समय-समय पर गुप्त रूप से साकरस जाकर पता लगाएँ कि नगीना की अपेक्षा साकरस की कैसी तैयारी चल रही है, और किस तरह की रणनीति वे अपनाने जा रहे हैं?

पतंग लूटने वालों ने अपने-अपने हिसाब से पतंग लूटने के लिए देसी, दखनी कीकर और बेर की झाड़ियों को लंबे से लंबे बाँस में बाँधकर डंगे तैयार कर लिए। कुछेक ने धोबीघट्ट पर मोर्चा सँभाल लिया, तो कुछेक ने उससे भी आगे बोहराकी के कुएँ पर।

अलग-अलग हिस्सों के डंगेधारियों ने मन ही मन दुआएँ और प्रार्थनाएँ करनी शुरू कर दीं। उपरलीघाँ वाले यह चाह रहे थे कि तीज वाले दिन हवा पुरवा चले और निचल्लीघाँ वाले डंगेधारी मनौती माँग रहे थे कि हवा पछुआ चले लेकिन जैसा कि सावन-भादो में प्राय: होता है, इस बार भी वैसा ही हुआ यानी हवा पुरवा ही थी। परंतु एकाएक तीज से ठीक दो दिन पहले मेह की ऐसी झड़ी लगी कि जब वह रुकी तो दूर-दूर तक जहाँ भी नज़र जाती, बस पानी ही पानी दिखाई देता। सारे जोहड़-पोखर एक हो गए। काले पहाड़ और साँठावाड़ी की पहाड़ी से उतरा पानी रात भर में पूरे इलाक़े में फैल गया। खेतों में कचरे-ककड़ी की बेलें जगह-जगह पानी में तैरती हुई दिखाई देने लगीं।

अचानक रात में बाढ़ के रूप में आए इस पानी ने तीज का सारा मज़ा किरकिरा कर दिया। मेह रुकने के अगले दिन तक आसमान में जब कपासी बादल काले पहाड़ को छूते हुए आगे बढ़ते, तो लगता जैसे अभी ऊपर वाले का जी भरा नहीं है।

जुम्मा के बँगले में बैठे मँगतू, सलेमी, बुग्गल, पूरन मास्टर तथा अतर खाँ समेत डेढ़ दर्जन लोग मौसम के इस मस्तमौलेपन

से चिंतित हो उठे कि अगर कल तीज वाले दिन बादल नहीं खुले तो सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा।

''अगर भई, उस दिन बदली नई छटी तो साड्डी मेनत बेकार चली जाएगी।''

पूरन मास्टर ने अपने पंजाबीपने में बात शुरू की।

''मास्टरजी, ऐसो मत सोच... यार, मैंने तो इन पतंगन् के चक्कर में अपनी दिहाड़ी की भी ऐसी की तैसी कर दी।'' जुम्मा ने पूरन मास्टर को उसके कुबोल पर टोका।

''यार, बादल खुलने की उम्मेद वैसे कम ही दीख री है... और अगर मौसम ऐसोई रहो तो सारे हुचकान् की रील पसीज जाएगी... पतंगन् की लेही भी अभी गीली है...।'' मँगतू ने मौसम के रूठने और उसके बाद होने वाले नुकसान पर चिंता प्रकट करते हुए कहा।

''अरे, अभी तो पूरो दिन पड़ो है... हो सके दुपहर पूछे बादल खुल ही जाएँ...।'' बुग्गल ने आशा जताई।

इस तरह आधा दिन आगे की रणनीति और मौसम के साफ़ होने की उम्मीद में बीत गया।

दोपहर बाद जुहृ की अज़ान के आसपास इतनी तेज़ हवाएँ चलने लगीं कि आसमान में छाए बादल तेज़ी से छँटने लगे, बिलकुल ऐसे जैसे बादल भी कल होने वाले इस आकाशीय युद्ध को देखना चाहते हैं। बादलों के छँटते ही धूप निकल आई। देखते ही देखते सभी हरकत में आ गए। सारी पतंगों और रील के हुचकों को धूप में लाकर रख दिया गया। मौसम के बदले हुए इस रूप को देखकर डंगेधारियों के चेहरे मारे ख़ुशी के खिल उठे।

ठीक तीज वाले दिन पूरे नगीना में मेला-सा लग गया। रहड़ीवालों ने बीच गोहरवाली में खाने-पीने की दुकानें सजा लीं। इन रहड़ीवालों की याद ताज़ा होते ही सलेमी का यह भी कहना है कि उस दिन रहड़ीवालों के पास जितना सामान था देखते ही देखते सब ख़त्म हो गया। बहरहाल...

जुम्मा मनिहार के बँगले से सारे हुचकों और पतंगों को लाला नौबत राय की हवेली की सबसे ऊपरवाली छत पर लाकर रख दिया गया। मँगतू के हिसाब से लाला नौबत राय की छत ही इस मौक़े के लिए सबसे उपयुक्त थी। पेच शुरू होने से पहले रील के रास्ते में पड़ने वाली ऊँची-ऊँची नीम, पीपल और कीकर की टहनियों को छाँग दिया गया ताकि पेच लड़ते समय रोल इन टहनियों में उलझ न पाए।

सारा नगीना घरों से निकलकर अपनी-अपनी छतों पर आ गया और इंतज़ार करने लगा मँगतू की अँगुलियों की जादू का।

लगभग ग्यारह बजे पूरे नगीना में आग की तरह ख़बर फैल गई कि साकरसवाले भी पूरी तैयारी के साथ आ पहुँचे हैं। लाला नौबत राय की हवेली से लगभग पचास कदम दूर चंदू परधान की हवेली की छत उन्हें दे दी गई। पेच शुरू होने से पहले ही डंगेधारियों ने दूर-दूर तक फैले पानी में ही पोजिशन ले ली। आसपास की छतों पर कुछ लोगों को यह देखने के लिए तैनात कर दिया कि कोई पेच लड़ती पतंगों के माँजों में लंगर न डाल पाए।

इस तरह सारी तैयारियों के बाद दोपहर को करीब बारह बजे दोनों ओर के उस्तादों ने अपनी-अपनी पहली पतंग में कन्ना डाला और उनको उड़ाकर हवा का जायजा लिया। हवा का मिज़ाज भाँपने के बाद जैसे ही एक-दूसरे को पतंग लड़ाने का संकेत मिला कि एक रोमांचकारी दृश्य शुरू हो गया।

मँगतू की अँगुलियों पर न केवल नगीनावासियों को पूरा यक़ीन था बल्कि उसकी अँगुलियों के जादू से स्वयं साकरसवाले भी भली-भाँति परिचित थे — किसी हद तक भीतर ही भीतर सहमे हुए भी।

इसके बाद वही हुआ जिसकी उम्मीद थी। अकेली पहली पतंग से मँगतू ने बड़ी चतुराई और अपने कौशल से लगातार चार पतंगों को धराशायी कर दिया। हर पतंग के कटने के बाद आसपास की छतों से 'बम्मारा' के तेज़ स्वर गूँजने लगे। हर बम्मारा के समवेत स्वर के साथ ही मारे खुशी के लाला नौबत राय की छत के साथ-साथ आसपास की छतें भी थरथराने लगीं।

जब–जब बम्मारा का स्वर हवा में गूँजता हुआ शून्य में तैरता, तब–तब हवेली के चौक में बैठी लाला नौबत राय की घरवाली, जिसे सब आदर से चाची पुकारते हैं, इस नासपीटी तीज को कोसना शुरू कर देती कि जिसे देखो वही मुँह उठाए चौक को खूँदता हुआ सीधा छत पर ही जाकर दम ले रहा है। किसी का पता ही नहीं चल रहा है कि ऊपर जाने वाला चमार है या चूहड़ा, खटीक है या कुम्हार, मेव है या माली—बस, अपने बाप की छत समझ कर दनदनाते हुए चले आ रहे हैं।

लाला नौबत राय की घरवाली यानी चाची को तो वैसे भी इन चमार, चूहड़ों, कुम्हार, खटीकों, और माली–मेवों से हमेशा नफ़रत–सी रही है, बावजूद इसके कि टुरमल्ली कुम्हार का इकलौता छोरा घंटोली उसका चौका–बरतन करता हुआ, भाँडे–बरतनों में हाथ घघोलता हुआ और पूरे चौक में निर्बाध रूप से इधर से उधर चप्पलें चटकाता हुआ घूमता है। दौलत माली का सबसे छोटा छोरा खाना बनाने से लेकर बोहराकी के कुएँ से पीने का पानी भरता है, और वही दीन मोहम्मद उर्फ़ दीना पल्लेदार जिसके बदन से उसे हमेशा गाय के गोश्त की बदबू आती है, बे–रोकटोक इसी चाची के पीछे–पीछे पूरे चौक को लाँघकर रसोई के सामने से सबसे आख़िरी वाले कमरे में जाता है, जिसे लाल जी ने गोदाम बनाया हुआ है, तथा अनाज की बोरियों को पीठ पर लादे दिन में कोई दर्जन भर चक्कर लगाता है। बस, दीना इतनी भलमनसाहत ज़रूर बरतता है कि वह पैरों से पणहा बायने के बाहर काढ़कर आता है।

लेकिन साकरस की पाँचवीं पतंग ने सारा माहौल गरमा दिया यानी इस पतंग ने नगीना की जैसे ही पहली पतंग काटी कि चंदू परधान की हवेली की छत से एक के बाद एक समवेत स्वर गूँजने लगे।

''बोलो–बोलो नघीणा की फाऽऽट्टी है...''

चंदू परधान की छत खुद शर्मसार हो उठी कि उसी की टाँट पर बैठ कर, उसी के गाँव को कैसे–कैसे विशुद्ध भारतीय बम्मारा सुनने को मिल रहे हैं।

बस, फिर क्या था मँगतू पर एक के बाद एक फ़ब्तियाँ कसी जाने लगीं।

''अरे मँगतू, वाड़ी नघीणा की नाक कटवाई देएगो कहा?'' जुम्मा ने दाँत पीसते हुए कहा।

''यार, हमारी तो एक ही पतंग कटी है तिहारी वाई पे फटी जा री है... अब देखियो मँगतू को कमाल...।'' बुग्गल ने हिम्मत बँधाते हुए कहा।

बिना विचलित हुए मँगतू ने पतंगों के ढेर के ऊपर से चद्दर को हटाया और कई पतंगों को जाँचने के बाद उसने उनमें से एक तिरंगा झप्पू निकाल लिया। तिरंगा मे कन्ना डालने के बाद उसे हवा में छोड़ा तो पाया तिरंगा मँगतू की इच्छानुसार ही निकला।

आकाश में जाते ही तिरंगा विपक्षी पतंग को देखकर मचल उठा। किसी लड़ाकू हवाई जहाज के पायलट की मानिंद मँगतू तिरंगा झप्पू को कभी दाईं ओर गोता खिलाने लगा, तो कभी बाईं ओर। कभी वह एकदम आकाश को चीरता हुआ सिर के ऊपर आकर ठहर जाता, तो कभी एक ही गोते में लगभग ज़मीन को छूते हुए पलट कर फिर वापस हो लेता। पूरी लय और गति के साथ जब तिरंगा दाएँ–बाएँ, ऊपर–नीचे फड़फड़ करता हुआ मँगतू की अँगुलियों के इशारे पर आकाश में हरहरा कर मचलता तब लगता मानो किसी जाँबाज़ की बाजुओं की मछलियाँ मचल रही हैं। और अगले पल जैसे ही तिरंगा विपक्षी पतंग के नीचे आया कि पूरन मास्टर चीख़ा, ''मँगतू, शह दे के !''

और इससे पहले कि पूरन मास्टर गले में फँस गए शब्दों को बाहर खींचता, पलक झपकते ही मँगतू ने अपने तिरंगे को गोता खिलाते हुए लगभग ज़मीन से छुआ कर इस सफ़ाई से विपक्षी पतंग के ऊपर डाल दिया कि साकरस के उस्ताद की समझ में ही नहीं आया कि एकाएक यह हुआ क्या ? मँगतू की अँगुलियों का जादू देखकर लाला नौबत राय की छत पर जमा ठट्टा मारे ख़ुशी के झूम उठा। जिन गलों में साँसें लगभग अटक गई थीं और दिल रह–रह कर बाहर आने को हो रहा था, मँगतू की अँगुलियों ने सबको पुनः अपनी–अपनी जगह वापस भेज दिया।

देर तक यह पेच चलता रहा। लोगों के अनुमान के अनुसार यह पेच सबसे लंबा साबित होने लगा। दोनों पतंगें जैसे-जैसे आसमान की ऊँचाइयाँ मापने लगीं वैसे-वैसे पतंगों का आकार निम्नतम होने लगा। देखने वालों को जँच गया कि इस पेच पर दोनों गाँवों की इज़्ज़त टिकी हुई है। डंगेधारी हाथों में ऊँचे-ऊँचे डंगे लिए और आसमान में पतंगों पर नज़र गड़ाए पानी में ही छपाक्-छपाक् तेज़ी से दौड़ पड़े।

दोनों तरफ़ के एक के बाद एक तीन हुचके खाली हो गए लेकिन मजाल है किसी की तो पतंग कट जाए। दोनों पतंगों ने जैसे हार न मानने की क़सम खा ली। मँगतू की अँगुलियों में थमी डोर के इशारे पर तिरंगा आसमान की ऊँचाई को चीरता हुआ निर्बाध गति से आगे बढ़ रहा है। सलेमी के हाथों में थमा हुचका पूरी गति से घूम रहा है। उसने पूरा ध्यान और पूरी ताक़त हुचके को पकड़ने में झोंक दी वरना ऐसा न हो कि हुचके में लिपटी रील कहीं अटक जाए और...। वैसे ऐसे मौक़ों पर पतंग कटने की आधी से ज़्यादा ज़िम्मेदारी हुचका पकड़ने वाले के सिर मढ़ दी जाती है।

मारे पसीने के मँगतू का ललाट भीग गया। कानों में झूलती सोने की मुर्कियों और पार्थ की तरह आकाश में उड़ती मछली की आँख पर टिके निशाने का दृश्य सचमुच देखने और रोमांच पैदा करने वाला था।

इससे पहले कि कुछ फ़ैसला होता अचानक लोगों ने देखा कि नगीना के तिरंगा ने आकाश में ही पेच के दौरान चकराना शुरू कर दिया। बस, फिर क्या था लाला नौबत राय की छत पर जमा ख़लकत की साँसें जैसे गले में अटक गई। इधर तिरंगा का चकराना शुरू हुआ और उधर मँगतू को लगा जैसे उसके हाथ में थमी पतंग की रील से एक नहीं बल्कि एकसाथ कई पतंगें बँधी हुई हैं। ऐसी परीक्षा की घड़ी में ही माहिर उस्ताद का पता चलता है। देखने वालों ने तनी हुई पतंग की रील से अंदाज़ा लगा लिया कि पूरन मास्टर ने रील खरीदते समय अपनी होशियारी का कितना परिचय दिया है, वरना अब तक तो पतंगें रील को तुड़ाती हुई ये जाती, वो जाती। थोड़ी देर के लिए आसपास आसमान में उड़ रही चमगादड़ों की तरह अन्य पतंगों को आसमान से उतार कर छतों के कोनों में दाब दिया गया। सलेमी के काँपते हुए हाथों से चकरघिन्नी होते हुचके को बड़ी ही सावधानी और सफ़ाई के साथ जुम्मा ने अपने हाथों में ले लिया। लोगों की आँखों की पुतलियाँ चकराती हुई पतंग के साथ-साथ घूमने लगीं, और तिरंगे के सही-सलामत वापस लौटने के लिए असंख्य दुआएँ और प्रार्थनाएँ होठों पर थिरकने लगीं।

बड़ी मुश्किल पैदा हो गई मँगतू के लिए कि चलते हुए पेच के बीच एकाएक चकराती हुई अपनी पतंग को कैसे सँभाले? चलती हुई पतंग को इस समय रोकना ख़तरे से खाली नहीं है क्योंकि रोकते ही पतंग कटे बगैर मानेगी नहीं और यदि उसकी पतंग ने साकरसवालों की पतंग को काट भी दिया, तो इस स्थिति मे तिरंगे का वापस आना एकदम असंभव है क्योंकि जिस तेज़ी के साथ वह नियंत्रण से बाहर होती जा रही है, उसे देखते हुए उसका आना एकदम असंभव है। यानी अपने तिरंगे का कटना मँगतू को गवारा नहीं है और सही-सलामत उसका वापस आना संभव नहीं हैं — तब क्या किया जाए?

ऐसे ही मौक़ों के लिए मँगतू को हमेशा याद किया जाता है।

हारकर छत पर जमा भीड़ ने सब नियति और मँगतू के ऊपर छोड़ दिया — यह सोच कर कि चाहे तो ये दोनों नगीना को तिरा दे या डुबो दें।

मँगतू ने पूरा ध्यान लगा दिया तिरंगा पर लेकिन मजाल है तिरंगा सँभले तो सही। मँगतू कभी तिरंगा को शह, तो कभी लच्छा देकर हर तरह से कोशिश करने लगा कि किसी तरह वह क़ाबू में आ जाए किन्तु सब व्यर्थ।

एकाएक मँगतू को एक उपाय सूझा।

उसने सलेमी को पास बुलाते हुए कहा, ''सलेमी, जल्दी कोई फेड़ा ला !''

सलेमी बिना कोई प्रश्न किए तेज़ी से छत से नीचे उतर गया।

सलेमी के जाते ही जुम्मा ने पूछा, ''फेड़ा की कहा जरूरत आ पड़ी?''

मँगतू ने जुम्मा के सवाल का कोई जवाब नहीं दिया, देता भी कैसे ? उसकी योजना तो अभी उसके मन में ही पक रही

है, सो भला किसी की समझ में कैसे आती।

सलेमी तुरंत भाग कर एक फेड़ा ले आया।

''मास्टर जी, यार हमारी पतंग तो अब वापस आणा सू रही... नाएँ तो ऐसो ना करें के हम अपनी रील में या फेड़ा ए बाँध के छोड़ देएँ ?'' मँगतू ने अपनी योजना का पहली बार खुलासा करते हुए कहा।

''मँगतू बावलो हो गो है... अरे, जब किसी की पतंग कटी ही नहीं है तो पहले कैसे अपनी पतंग ए तोड़ के छोड़ देएगो ?'' पूरन मास्टर ने आधा तर्क और आधा सवाल करते हुए पूछा।

''यार, हमारी पतंग तो वैसे भी उल्टी ना आएगी... या मारे हमारी पतंग तो जाएगी ही, उनकी भी क्यों छोड़ें !'' पतंग पर ध्यान रखते हुए मँगतू ने सुझाव दिया।

तुरंत पूरन मास्टर की समझ में तो मँगतू की यह योजना आ ही गई बल्कि छत पर जमा भीड़ ने भी उसे सराहा। अगले ही पल पूरी छत को खाली करवा दिया गया। कुछ तहमद-पायजामा ऊपर सरका कर मुँडेर पर बैठ गए और कुछ बराबर वाली छत पर चले गए। पूरी छत पर सिर्फ़ तीन-चार जने रह गए।

''बुग्गल, ओतरी दा छाणा... जल्दी हुचका खाली कर।'' पूरन मास्टर ने बुग्गल को मलामत के साथ-साथ आदेश देते हुए कहा।

इसके बाद बुग्गल ने लंबे-लंबे हाथ मारकर हुचके से जल्दी-जल्दी रील खींची और हुचके से रील को तोड़कर उसके अंतिम छोर पर फेड़ा बाँधते हुए बोला, ''मँगतू, मैंने फेड़ा बाँध दियो है ।''

मँगतू ने मुड़कर पीछे की ओर देखा। जब उसे तसल्ली हो गई कि सब योजना के अनुसार हुआ है, तो अपने हाथ से रील को छोड़ते हुए बोला, ''साकरसवालो, तुम भी कहा याद करोगा के काई आदमी सू पल्लो पड़ो हो।''

नगीना के तिरंगा को आकाश में डगमगाते हुए जैसे ही चंदू परधान की छत पर खड़े साकरसवालों ने देखा कि उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। मारे खुशी और विजयी भाव के उनका समवेत स्वर गूँज उठा। ''बम्मारा । बोलो नगीना की फाट्टी है'' कहकर जैसे ही उनके उस्ताद ने अपनी पतंग को रोका कि उसे लगा मानो उसके हाथों से तोते उड़ गए।

अगले ही पल सबने देखा कि नगीना के तिरंगा के साथ साकरस की पतंग भी डगमगाती हुई चल पड़ी है। दर असल, जैसा वे समझ बैठे थे वैसा हुआ नहीं क्योंकि मँगतू की पतंग की रील, उनकी रील को लगातार रेत रही थी और जैसे ही उन्होंने अपनी पतंग को रोका कि उसके रुकते ही उनकी पतंग भी कट गई।

पूरे नगीना ने मँगतू के इस आत्मघाती निर्णय को खूब सराहा कि किस तरह योजनाबद्ध तरीके से मँगतू ने न केवल नगीना की नाक कटते-कटते बचा ली बल्कि साकरस को भी दिन में तारे दिखा दिए।

मारे खुशी के जुम्मा ने तो मँगतू को कौली में भरकर छाती से लगा लिया। पूरन मास्टर का कहना ही क्या, पहले तो उसने मँगतू को अपनी आदत के अनुसार पाँच-सात भारी-भरकम गालियाँ दीं और फिर वहाँ जमा ठट्टे को संबोधित करते हुए बोला, ''ओए, ओतरी दे छाणो ! सीक्खो कुछ... पतंग कैसे उड़ाई जाती है... ये तो मँगतू की ही हिम्मत थी जुम्मा होता न... सर्तिया आज नगीना की नाक कट ही जाणी थी...।''

''मँगतू, तेने तो आज हद ही कर दी...।'' सलेमी ने हुचके को ज़मीन पर रख, साफ़ी से माथे पर चू आए पसीने को पोंछते हुए कहा।

मँगतू ने भी कंधे पर पड़ी लाल साफ़ी से पहले पसीना पोंछा और फिर गटागट पानी से भरे गडुए को रीता कर गया। अगली पतंग में कन्ना डालने के लिए वह अभी पतंगों के ढेर के पास पहुँचा ही था कि तभी उसका सबसे छोटा लड़का बदहवास-सा दौड़ा हुआ आया और आते ही बोला, ''चाचा जल्दी घर चल।''

''कहा हुओ ?'' लड़के की ओर देखे बिना, पतंगों के ढेर से एक पतंग छाँटते हुए पूछा मँगतू ने।

''माँ के बहोत तेज़ बुखार चढ़ रो है।'' कहते-कहते इस बार लड़का रुआँसा हो गया।

''चल अभी आरो हूँ।'' दियासलाई को सींक से पतंग में कन्ने के लिए छेद करते हुए मँगतू ऐसे बोला जैसे कुछ हुआ ही न था।

''ओए, ओतरी दा छाणा। चल खड़ा हो... माई आवे पेले भरजाई नू दवाई दिला के आ... जुम्मा चल, मैं और बुग्गल भी चलते हैं...।''

इतना कहकर पूरन मास्टर उन दोनों को साथ लेकर चलने लगा तो मँगतू झुँझलाते हुए बोला, ''कौन-सी आफत आ पड़ी यार... तुम यई रहो मैं ही चलो जाऊँगो।'' कहते हुए मँगतू लंबे-लंबे डग भरते हुए छत से नीचे उतर गया।

मँगतू के जाने के बाद आगे की बागड़ोर सँभालने की किसी की हिम्मत नहीं हुई। इधर जब जुम्मा मनिहार, बुग्गल चक्कीवाला, पूरन मास्टर के अलावा जितने भी अपने आपको तीस मारखाँ मानते थे, बारी-बारी से पूछा गया तो सब आपस में बगलें झाँकने लगे।

उधर चंदू परधान की छत से बार-बार यह पूछा जाने लगा कि नगीना ने पतंग उड़ानी क्यों बंद कर दी? क्या पतंग खत्म हो गई हैं, रील खत्म हो गई है, या फिर साकरस से फटने लगी है?

अंतिम फ़ब्ती पर जुम्मा खून का घूँट पीकर रह गया। किन्तु जब लगा कि चंदू परधान की छत से फ़ब्तियों का सिलसिला रुक नहीं रहा है तब पूरन मास्टर से रुका नहीं गया, और बोला, ''ओए जुम्मा, ओतरी दा छाणा चल... मैं हुचका पकड़ता हूँ और तू पतंग सँभाल.. यार, होगी जो देखी जाएगी।''

जुम्मा को भी शायद ऐसे ही नैतिक प्रोत्साहन की ज़रूरत थी। उसने तुरंत एक पतंग में कन्ना डाला और उड़ाते हुए शह देने लगा। आकाश में जाते ही पतंग जुम्मा से बेक़ाबू होने लगी। जुम्मा के हाथ-पाँच फूल गए बेक़ाबू पतंग को देखकर। अभी वह पतंग को लच्छा देकर सँभाल ही रहा था कि विपक्षी पतंग ने जुम्मा की पतंग को धर दबोचा।

नगीना की पतंग के नीचे आते ही चारों तरफ़ से सब जुम्मा पर बरस पड़े।

''जुम्मा, तैने अब कटवा दी या नघीणा की नाक...।'' बुग्गल ने दाँत पीसते हुए कहा।

''अबे पतंग को लच्छा देके ढुलकियाँ डाल...।'' हुचके को पकड़े-पकड़े पूरन मास्टर झल्लाते हुए बोला।

जुम्मा ने तुरंत रील की लच्छा दिया कि पतंग अगले पल ढुलकियाँ पड़ने लगी। पूरी लय और गति के साथ पतंग आसमान को चीरती हुई क्षितिज की ओर बढ़ने लगी।

तभी मुँडेर पर बैठे एक युवक ने लगभग चिल्लाते हुए कहा, ''जुम्मा, थोड़ी देर और... मँगतू भगो आ रो है...।''

छत पर आते ही लगभग जुम्मा के हाथों से झपटते हुए जैसे ही मँगतू ने पतंग को सँभाला कि सबकी साँस मानो वापस लौट आई।

इसके बाद शाम तक मँगतू ने साकरस को दम नहीं लेने दिया। उसकी कुशल अँगुलियों ने एक के बाद एक उनकी जो पतंगें काटनी शुरू की, तो यह सिलसिला तभी रुका जब चंदू परधान की छत ने अपनी पराजय स्वीकार नहीं कर ली।

चंदू परधान की छत द्वारा पराजय स्वीकार करते ही विजयोत्त्सव के इस नायक को वहीं लाला नौबत राय की छत पर जमा ठट्टे ने कंधों पर उठाकर ख़ुशियाँ मनानी शुरू कर दीं और शाम को तीजन के कुएँ के पास धोबीघट्टा पर आयोजित दंगल में मास्टर हयात खाँ द्वारा नगीना की जीत और मँगतू के जौहर की बाकायदा विधिवत् उद्घोषणा की गई। यहाँ तक कि बाद में कई दिनों तक गोपाल सन्नार्थी की होटल पर चाय की चुस्कियों के बीच पतंगबाजी के नुकतों पर तबसरा होता रहा कि मँगतू ने किस

सयानपत से साकरस के मंसूबों को धूल-धूसरित कर दिया। कि कैसे जुम्मा मनिहार ने जोश में आकर साकरस की चुनौती स्वीकार कर उनसे पेच लड़ा दिए कि किस कुशलता से मँगतू ने उस चुनौती को सफलता में परिवर्तित कर दिया। कि नगीना की नाक को मँगतू ने अपनी हिम्मत और दूरदर्शिता से किस तरह बचा लिया।

देर तक सलेमी अतीत के इस साँझे झूले पर पींगे खाता रहा। सलेमी देर तक जैसे ख़ुद मँगतू को अपने कंधों पर उचककर पूरे दंगल में चक्कर लगाता रहा लेकिन जैसे ही वह वर्तमान में लौटा तो लौटते ही उसकी आँखों की चमक क्षीण होती चली गई — क्यों ? क्योंकि यह वर्तमान उस अतीत से कहीं ज़्यादा कड़वा और चोटिल है, जिसकी चोट और कड़वेपन का अहसास ही नहीं होता है।

शब्दार्थ-टिप्पणी

हुचके फिरकी **हू-बहु** प्रतिकृति **रेतना** काटना **ज़िबह** रेत-रेतकर गला काटना **पणहा** जूता **गरियाना** गाली देना **वाजिब** औचित्य पूर्ण, उचित **कायल** अभिभूत **पुरवा** पूर्व दिशा से चलने वाली हवा **मेह** बादल **दिहाड़ी** प्रति दिन मिलने वाली मजदूरी **जायजा** जाँच-पड़ताल, मुआयना **मिज़ाज** प्रकृति, स्वभाव **समवेत** समूह, एक साथ में **छोरा** लड़का **ठट्टा** भीड़, समूह **खलकत** भीड़ **माहिर** निपुण **गवारा** सहमत, मंजूर **मजाल** सामर्थ्य **बावलो** पागल **रीता** खाली **तबसरा** विचार-विमर्श **नुक्ता** दोष, खामी, कमी

मुहावरे

नौ दो ग्यारह होना भाग जाना **पानी फिर जाना** निरर्थक हो जाना **ऐसी की तैसी करना** बेइज्जत करना **मजा किरकिरा होना** आनन्द में विक्षेप होना **नाक कटवाना** अपमानित होना **सिर मढ़ना** जबरदस्ती जिम्मेदार ठहराना **खुशी का ठिकाना न रहना** अति प्रसन्न होना **तीस मार खाँ होना** होशियारी दिखाना **बगले झाँकना** कुछ कह न पाना **हाथ पाँव फूल जाना** घबरा जाना **दाँत पीसना** क्रोधित होना **धूल धूसरित करना** पराजित करना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) मँगतू किस कला में निपुण था ?

(2) दादा सुग्गन ने मँगतू की पिटाई क्यों की ?

(3) सलेमी को दादा सुग्गन का गुस्सा वाजिब क्यों लगा ?

(4) पेंच बाँधते समय क्या शर्त रखी गई थी ?

(5) धूप के निकलते ही नगीनावासी अति प्रसन्न क्यों हो गए ?

(6) साकरसवाले क्यों सहमे हुए थे ?

(7) तिरंगा-झप्पू के करतबों का क्या परिणाम निकला ?

(8) जुम्मा मनिहार ने अपना ताँगा मुफ़्त में क्यों और कहाँ के लिए लगा दिया ?

(9) लाला नौबत राय की पत्नी नाराज क्यों है ?

(10) मँगतू को अचानक घर क्यों जाना पड़ा ?

2. उत्तर लिखिए :

(1) नगीना वासियों ने मँगतू को नायक का स्थान क्यों दिया?

(2) अचानक ऐसा क्या हुआ जिसने नगीना-वासियों का मजा किरकिरा कर दिया, वर्णन कीजिए ?

(3) 'काला-पहाड़' पाठ के आधार पर पतंगबाजी की तैयारी और इसके रोमांच का वर्णन कीजिए।

(4) एकाएक मँगतू को क्या उपाय सूझा? उसने उपाय को क्रियान्वित कैसे किया?

4. ससंदर्भ व्याख्या कीजिए :

(1) ''देखने वालों को जँच गया कि इस पेंच पर दोनों गाँवों की इज्जत टिकी है।''

(2) ''पूरे नगीना ने मँगतू के इस आत्मघाती निर्णय को खूब सराहा।''

5. निम्नलिखित मुहावरे का अर्थ लिखकर वाक्य प्रयोग कीजिए :

नौ दो ग्यारह होना, नाक कटवाना, दाँत पीसना, बगले झाँकना

योग्यता-विस्तार

- गुजरात सरकार द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय पतंग महोत्सव के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए।
- गुजरात में मनाए जाने वाले पतंग - महोत्सव का वर्णन कीजिए।

•

15 मुर्दहिया

तुलसीराम

(जन्म : सन् 1949 ई. ; निधन : सन् 2015 ई.)

दलित साहित्यकार और चिंतक तुलसीराम का जन्म आजमगढ़ के धरमपुर में हुआ था। उच्च शिक्षा-प्राप्ति के बाद उन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्व विद्यालय के सेन्टर ऑफ इंटरनेशनल स्टडी में अध्यापन कार्य किया। देश की जातिगत व्यवस्था के वे घोर विरोधी थे। उनका मानना था कि मार्क्स, अंबेडकर और बुद्ध-तीनों विचारों का समन्वय कर देश के लिए बहुत कुछ किया जा सकता है। कम्यूनिस्ट आंदोलन और रूसी मामलों के वे विशेषज्ञ माने जाते थे। अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध चिंतन और दलित आंदोलन में उनकी गहरी सूझ-बूझ थी।

'मुर्दहिया' शीर्षक से छपी उनकी आत्मकथा हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि मानी जाती है। 'आंगोला का मुक्ति संघर्ष' सी. आई. ए. राजनीतिक विध्वंश का अमेरिकी हथियार', 'पर्शियाटूईरान', 'द हिस्ट्री ऑफ कम्यूनिस्ट मूवमेन्ट', 'आइडियोलॉजी इन सोसियल ईरान रिलेशंस' उनके प्रमुख ग्रंथ हैं। तुलसीराम को अस्मितावादी राजनीति के विरोधी और वामजनवादी राजनीति के समर्थक के रूप में जाना जाता है। 'मुर्दहिया' को 2011का चौथा 'अयोध्याप्रसाद खत्री सम्मान' प्राप्त हुआ था।

'मुर्दहिया' सिर्फ एक व्यक्ति की आत्मकथा नहीं सारे दलित समाज की व्यथा कथा है। आत्मकथाकार के गाँव के निकट मुदर्हिया नामक स्थान उसकी जन्मभूमि भी है और सोर गाँव की कर्मस्थली भी। दलितों के सारे काम वहीं संपन्न होते थे। गाँव में दलितों के साथ सवर्णों का व्यवहार अपमानजनक होता था। लेखक ने आत्मकथा के इस अंश में दलितों के रीति-रिवाज, खान-पान, अंध-विश्वास, लोकगीत, उत्सव-त्योहार, नाच-गान, संगीत-नौटंकी आदि अनेक चीजों का यथार्थ वर्णन करते हुए इस बात पर बल दिया है कि दलितों का संपूर्ण जीवन सवर्णों की जीवन-शैली से भिन्न होता था। सवर्णों द्वारा की जाने वाली उपेक्षा दलितों की हर प्रवृत्ति में अनायास ही झलक जाती थी। दलितों के सारे दुख-दर्दों की साक्षी है मुर्दहिया।

अब छुट्टियाँ दो-चार दिन की ही शेष रह गई थीं। आसमान में हैरतअंगेज नजारा उभरने लगा। लगातार दो साल के सूखे के बाद बादल गरजने लगे। लोग घरों से बाहर निकलकर आसमान को घूर-घूरकर देखने लगे। विशेष रूप से दलित नृत्य मुद्रा में प्रतीत होने लगे थे। पहली बारिश के साथ ही गाँव वाले आपस में चंदा करके एक सूअर खरीद लाए। समारोह चमरिया माई को बलि देकर बारिश का स्वागत किया गया। इसी बीच मुर्दहिया के ऊपर पूरे आसमान को घेरता हुआ एक विशाल अर्ध चंद्राकार इंद्रधनुष दिखाई दिया। हमारे गाँव के दलित इंद्रधनुष देखते ही हाथ जोड़कर 'इन्नर भगवान' की जयकार करने लगे, वे कहते थे कि अब 'इन्नर भगवान' खुश हो गए हैं, इसलिए खूब पानी बरसाएंगे। धनुष का विश्लेषण करते हुए गाँव वाले यह भी कहते कि जब इंद्र देवताओं की पंचायत बुलातें हैं, तो सभी देवता गोलाइ में बैठ जाते हैं, जिसके कारण वे इंद्र धनुष के रूप में आसमान में दिखाई देने लगते हैं। वर्षा की इस आस के बीच 1 जुलाई, 1959ने आगमन मेरी चिंता को धधका दिया। यह एक ऐसी तारीख थी जिससे मेरा भविष्य तय होने वाला था। घर में कोहराम मचा हुआ था। नग्गर चाचा जैसे विस्फोटक दिमाग वाले घर के लोग आरोप लगाने लगे कि मैं पढ़ाई के बहाने कामचोर बनना चाहता हूँ। बड़ी मुश्किल से दादी की जिद पर मुझे चार आना मिला, जो छठी कक्षा में नाम लिखाने की फीस थी। यह चवन्नी इस बात की गारंटी थी कि अब छठी से लेकर दसवीं कक्षा तक की पढ़ाई का मार्ग खुल गया। उस दिन मैं दौड़ते हुए स्कूल गया था। छठी कक्षा में मेरा दाखिला युगांतरकारी सिद्ध हुआ, क्योंकि यहीं से शुरू हुई थी मेरी अंग्रेजी भाषा की शिक्षा, जिसके ज्ञान ने मुझे आगे चलकर अपने गाँव में एक किसी अन्य ग्रह का मानव बना दिया था। छठी में अंग्रेजी पढ़ाने वाले मास्टर थे मुशाफिर लाल, किन्तु उन्हें भी सभी लोग सिर्फ मुंशी जी के नाम से जानते थे। वे उसी जिगरसंडी गाँव के रहने वाले थे, जहाँ के बाबू परशुराम सिंह थे। ये अंग्रेजी वाले मुंशी जी प्राइमरी वाले मुंशी जी से बिल्कुल भिन्न थे। वे अत्यंत मेहनती और अनुशासन वाले व्यक्ति थे। वे किसी के साथ भेदभाव नहीं करते थे। परिणामस्वरूप अंग्रेजी के प्रति मेरा आकर्षण एक तरह के पागलपन में बदल गया। मुंशी जी जो कुछ सिखाते-पढ़ाते, मैं सब कुछ रट लेता था। यहाँ तक कि किताब से जो भी पाठ पढ़ाते मैं दूसरे दिन उसे जबानी सारा कुछ बोल देता था। मेरी इस याद-

दाश्त के कारण मुंशी जी मेरे सबसे बड़े प्रशंसक बन गए। शीघ्र ही मैं अनेक अंग्रेजी के स्वतंत्र वाक्यों का मालिक बन बैठा, और जब मैं अपनी दलित बस्ती में किसी के सामने इन वाक्यों को बोलता तो लोग चकाचौंध होकर मुझे घूरने लगते थे। किन्तु मेरी दादी इस बात से चिन्तित हो गई थी कि कहीं मैं पागलपन की तरफ तो नहीं बढ़ रहा ? वह अक्सर दोहराती रहती कि सुनने में आता है कि ज्यादा पढ़ने से लोग पागल हो जाते थे। इसलिए मेरे मुँह से अंग्रेजी के शब्द सुनकर वह घबरा जाती थी। मेरी बस्ती के बदलू और बलराम दो ऐसे हरवाहे थे, जो शाम के समय काम से वापस आने पर सीधे मेरे पास आते थे और मुझे हमेशा अंग्रेजी बोलने के लिए कहते। मैं तुरंत दर्जनों छोटे-छोटे अंग्रेजी के वाक्य उनके सामने जड़ देता, जैसे — 'आई ऐम गोइंग', 'यू आर कमिंग' तथा 'ही इज रीडिंग' आदि आदि। मेरे मुँह से ऐसे वाक्यों को सुनकर लगता था कि मानो दिन भर की हरवाही से प्राप्त उनकी सारी थकान मिट गई। पागलपन कहीं बढ़ न जाए, इस चिन्ता में दादी मुझसे हमेशा कहती रहती ''हरदम अंड बंड मत बोला कर।'' इन तमाम अटकलों के बीच मेरा यह पालगपन बढ़ता रहा। प्राइमरी स्कूल में मेरा जो स्थान गणित के लिए था वही छठी के बाद अंग्रेजी के लिए हो गया। अंग्रेजी भाषा के कारण छठी कक्षा मेरे लिए अत्यंत आकर्षक बन गई।

वापस गाँव में अत्यंत खुशहाली का वातावरण छाने लगा था, क्योंकि आषाढ़-सावन के बीच दो साल बाद बड़ी घनघोर बारिश हुई और चारों तरफ बाढ़ ही बाढ़ आ गई थी। लोग रोपनी के लिए धान की जरई तैयार करने लगे तथा खेतों में 'लेव' लगाते। खेत में चारों तरफ से मेड़ द्वारा पानी को रोककर हल जोतने को लेव लगाना कहते थे, जिसमें मौसम के अनुसार आगामी फसल बोई जाती थी। लेव के बाद खेतों को हेंगा से हेंगाया जाता था। बाँस के तीन छह-सात फीट लम्बी काड़ियों को एक साथ पचरी ठोककर चौड़ा बना दिया जाता था, जिसे हेंगा या पाटा कहा जाता था। हेंगा को मोटे रस्से में बाँधकर जुआठे में नथे बैलों द्वारा खींचा जाता था। हेंगा के ऊपर अक्सर किसी बच्चे को भी बैठा दिया जाता था तथा हरवाहा स्वयं उस पर चढ़कर हेंगाने के लिए बैलों को हाँकने लगता था। पानी भरे जुताई किए गए खेत को समतल बनाने के लिए हेंगा पर बैठे बच्चों का बहुत मनोरंजन होता था। देखते ही देखते धान की फसलें लहलहा उठीं। दो साल की अत्यंत तबाही के बाद अकाल का दौर समाप्त होते ही बाढ़ के कारण ताल-पोखरे, नदी-नाले, डबरा-डबरी यहाँ तक कि धान के कियारे तरह-तरह की मछलियों से पट गए। मछलियों की बहुतायत इतनी ज्यादा हुई कि लोग टोकरी में भर-भरकर दूर-दूर स्थित अपने रिश्तेदारों के घर पहुँचाने लगे। मछलियों के आगमन ने दलितों की भुखमरी को हवा में उड़ा दिया। आगे आने वाले हर मौसम में इसी की बहार थी। मछलियाँ मारने के सिलसिले में एक वाकया मेरे साथ ऐसा हुआ, जिसे याद करके मैं आज भी विचलित हो जाता हूँ। गाँव की ताल से जुड़ी पतली नहर में मैं कंटिया लगा रहा था। एक जगह गिरई नामक मछली के छोटे-छोटे सैंकड़ों बच्चे पानी की सतह पर तैर रहे थे। ऐसे छोटे बच्चे, जिसे जरई कहा जाता था, उनकी माँ मछलियाँ अक्सर अपने साथ चराने के लिए पानी में इधर से उधर चला करती थीं। मैंने केंचुवा से गुंथी कंटिया को इन जरइयों के बीच फेंका। शीघ्र ही कंटिया का धागा तेजी से खींचा जाने लगा। मैंने कंटिया को उछालकर जमीन पर फेंका और मेरे हाथ में आ गई करीब एक पाव वजन वाली गिरई जो अपनी जरइयों को चरा रही थी। मैंने इस छटपटाती गिरई को जमीन पर पटककर मार डाला, उधर सैंकड़ों जरइयाँ इधर-उधर बिखरकर ऐसे दिशाविहीन हो गईं, जैसे पानी की सतह पर बिछी काई पर बड़ा-सा पत्थर फेंक दिया गया हो। इन मातृविहीन जरइयों को दिशाविहीन देखकर मेरे अंदर एक अति निर्दयी पापी होने की अनुभूति जग गई। आज भी पानी में तैरती जब भी किसी मछली को देखता हूँ तो मैं अपने को उसी निर्दयी पापी की अवस्था में पाने लगता हूँ। जो भी हो, उस बरसात ने हमारे गाँव में आने वाली हर संध्या को अपने पुराने रूप में तब्दील कर दिया था। सूरज डूबते ही झींगुर तथा रेउवाँ की निरंतर जारी रहने वाली चिंचियाती धुनों में हजारों मेढकों की टरटराहट मिलकर किसी को सोने नहीं देती थी। वहीं, गोबड़ौरों का समूह मैले के ढेर को गोलाकार ग्लोब का रूप देकर ऐसे ठेलते नजर आने लगे थे कि मानो दु:खों से भरी इस धरती को लुढ़काकर वे किसी अन्य ग्रह पर ले जा रहे हों। ढिबरी तथा लालटेन जैसे रोशनी के स्रोतों पर पतिंगों का हुजूम आत्महत्या के लिए मजबूर होने लगा था। राहत की बात यह थी कि ये सारी गतिविधियाँ उस भीषण अकाल के समापन की ही घोषणा कर रही थीं। सावन आते ही नागपंचमी की आहट पाकर चुड़िहारिन गाँव-गाँव घूमकर कजरी विधा में गाने लगीं थीं :

'एक दिन छल कइलै हो मुरारी सुनिए-
बनिके अइलैं चुड़िहारी सुनिए ना।'

गोदना गोदनेवालियाँ भी ऐसी धुनों पर फेरी लेने लगी थीं। नीम के पेड़ों पर पड़े झूले तो संध्या के समय मनोरंजन के सबसे बड़े केन्द्र बन गए थे। गाँव के दलित मजदूर और मजदूरिनें लोकगीतों की धुन पर झूल-झूलकर दिन भर काम से मिली थकान को हवा में उड़ाने लगीं। इसी बीच घुमंतू नटों की गाँव के बाहर सिरकियाँ भी गड़ने लगीं। ये सारी बरसाती गतिविधियाँ पिछले दो साल अकाल के दौरान एकदम बंद हो गई थी। किन्तु सन् 1959 के बरसाती दिनों में इनकी वापसी से हमारी दलित बस्ती जीवंत हो उठी थी।

उस बरसात में करीब पंद्रह सदस्यीय घुमंतू नटों के एक झुंड ने हमारी दलित बस्ती के दक्षिण में स्थित ऊसर जमीन पर अपनी सिरकियाँ लगा लिया। त्रिकोण झोंपड़ीनुमा सिरकी सरपत तथा कपड़ों से बनाई जाती थीं। उन्हें सैनिक टेंट सरीखे गाड़कर नट रात में उसके अंदर सोते थे। ऐसे खानाबदोश नट बरसात के दिनों में घूम-घूमकर लोगों को पहलवानी सिखाते थे, जिसके बदले उनकी रोजी-रोटी चलती रहती थी। ये नट आल्हा गाने में माहिर होते थे तथा ढोल वादन में अत्यंत पारंगत। हमारे गाँव में जिस नट परिवार ने सिरकी लगाया था, उसका मुखिया बहुत हट्टा-कट्टा पहलवान था, जो तुर्कों जैसा प्रतीत होता था। उस परिवार की युवतियाँ अत्यंत सुंदरी थीं, जिनके बारे में गाँव में तरह-तरह की चर्चाएँ होने लगी थीं। अपनी किसी बात को मनवा लेने की इन नटों में अद्भुत क्षमता होती थी। वे सब कुछ गा गाकर मनवा लेते थे। वीरता भरे किसी भी आल्हा प्रकरण में वे सामने वाले व्यक्ति को पिरोकर ऐसा दृश्य पैदा कर देते थे, जिससे भावुक होकर लोग उन्हें हर तरह की मदद के लिए राजी हो जाते थे। इसी क्रम में बस्ती के लोग पहलवानी सीखने के लिए राजी हो गए। मुर्दहिया के पहले एक बाग में अखाड़ा तैयार किया गया तथा करीब बीस युवक उस नट पहलवान से कुश्ती, बना-बनेठी, तलवार आदि भाँजना सीखने लगे। अखाड़े में नट तरह-तरह के दाँव सिखाता तथा वहाँ भारी भीड़ तमाशबीनों की इकट्ठा हो जाती। एक बार सिखा दी गई तरकीबों की प्रैक्टिस के लिए वह नट बीच-बीच में वीर रस से ओतप्रोत ढोल की थाप को ऐसी सुरीली बना देता था कि ये सारी नट विद्याएँ सबके सिर चढ़कर बोलने लगती थीं। हमारे परिवार के दो युवक सोबरन तथा गोकुल भैया पहलवानी सीखे। नटों द्वारा ऐसी पहलवानियाँ एक 15 दिवसीय पर्व की तरह होती थीं, जिसके बाद शुरू होता था विदाई समारोह। जिन-जिनके घर के युवक पहलवानी सीखते थे, नट पहलवान बारी-बारी से उनके घर आल्हा का आयोजन करता था। जिस दिन हमारे दरवाजे पर आल्हा का आयोजन हुआ, उस दिन सैंकड़ों लोग वहाँ उपस्थित हो गए थे। लोग घंटों तक मंत्रमुग्ध होकर आल्हा सुनते रहे। अंततोगत्वा, जब वह नटसमूह हमारी बस्ती से विदाई लेकर अपनी सिरकियाँ उखाड़ने लगा, तो घर-घर में मातम सा छा गया था। जब वे सिरकियों को अपनी पालतू घोड़ी की पीठ पर लादकर एक अजनबी मंजिल की तरफ जाने लगे तो मैं भी उन्हें बड़ी ललचाई निगाहों से देखता रहा और बार-बार सोचता रहा कि यदि उनके काफिले में मैं भी होता, तो कैसा लगता ? देखते ही देखते नटों का यह झुंड मुर्दहिया के रास्ते हमारी आँखों से ओझल हो गया।

जाहिर है उस बरसात ने सूखाग्रस्त गाँवों की दलित बस्तियों में अनेक गतिविधियों की भरमार कर दी थी। अब जो चिट्ठियाँ मुझसे लिखवाई जाती थीं, उनमें किसुनी भौजी जैसी युवतियों द्वारा ऋतु वर्णन भी शामिल होने लगा था। उनके अर्थ वैसे ही होते थे, जैसे 'पद्मावत' में महाकवि जायसी की ये पंक्तियाँ —

'बरिसै मघा झकोरि झकोरी-मोर दोउ नैन चुवै जस ओरी।'

उधर हमारा स्कूल भी जाड़े की शुरुआत होते ही अनेक सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र बन गया। पहली पंचवर्षीय योजना चालू तो पहले ही हो गई थी, किन्तु उसका प्रभाव कहीं नहीं नजर आता था। पहली बार सन् 1959-60 के जाड़ों में हमारे क्षेत्र के जहानागंज कस्बे में ब्लॉक विकास केन्द्र खोला गया था, जिसके तहत विभिन्न स्कूलों में कृषि प्रदर्शनी आयोजित होने लगी। अनेक सरकारी अधिकारी जैसे ए.डी.ओ., बी.डी.ओ., तहसीलदार तथा डी.एम. आदि इन स्कूलों का दौरा करने लगे। ऐसी प्रदर्शनियों के अवसर पर मुझे यह अनुभव होने लगा था कि दो वर्ष पहले कौड़ा तापते हुए मुन्नर चाचा जो कुछ भी

रूस में 'समोही खेती' या नेहरू की योजना के बारे में बताते थे, उसका साकार रूप इनमें दिखाई देने लगा था। उस समय हमारे स्कूल पर बहुत बड़ा मेला लगा हुआ था। प्रदर्शनी में लहलहाती फसलों के बड़े-बड़े नमूने रखे गए थे। वहाँ बड़ी संख्या में किसान आते थे। शाम के समय बड़े स्तर पर सांस्कृतिक कार्यक्रम ब्लॉक द्वारा आयोजित किए जाते थे। उस समय जहानागंज ब्लॉक के एक मशहूर 'विरहा गायक' थे, जो अपनी गायन शैली में विकास कार्यक्रमों को भी शामिल किए हुए थे। उनका नाम था जयश्री यादव। लोहे का करताल बजाते हुए जब बुलंद आवाज में इन लाइनों —

'होइहैं अब कल्यान पंचवर्षीय योजना से -

हरा-भरा खेत-खलिहान पंचवर्षीय योजना से'

को गाते थे, तो सभी रोमांचित हो उठते थे। ऐसी प्रदर्शनियों के बाद गाँव-गाँव में ग्रामसेवक घूमने लगे। साथ में कभी-कभी स्कूलों के कृषि छात्र भी होते थे। वे सभी डिबलर से बीज बोने के लिए किसानों को प्रेरित करते रहते थे। 'डिबलर' लकड़ी का एक दर्जन खूटियों वाला चौकोर खाँचा होता था। इसके इस्तेमाल से खेत में खूटियों द्वारा बनाए गए छेद में फसलों के बीज बोए जाते थे। उस समय डिबलर से खेती का वर्णन विभिन्न लोकगीतों में खूब मिलता था। इन सब क्रियाकलापों से नेहरू जी की छवि ग्रामीण इलाकों में काफी निखरने लगी थी। लोग अकाल से उत्पन्न दु:ख-दर्द को भूल गए थे। धान की अच्छी फसलों के बाद चैत-वैशाख के दिनों में जौ, गेहूँ, चना, मटर आदि फसलों की कटाई से दलितों के बीच काफी खुशहाली छा गई थी, इसका कारण था कुछ महीनों के लिए उचित भोजन व्यवस्था, इस संदर्भ में हमारे पूरे क्षेत्र में दूर-दूर तक ब्राह्मण तथा क्षत्रिय जमींदारों के बीच चमारों को लेकर एक काव्यात्मक मुहावरा प्रचलित था —

'भादों भैसा चइत चमार-इनसे कबहूं लगै न पार'

इस निरादरपूर्ण अमानवीय अभिव्यक्ति में चमारों की पेट भरकर खाने की खिल्ली उड़ाई गई थी। उपर्युक्त उक्ति से यह भी प्रकट होता है कि भारत का सवर्ण समुदाय चमारों को भूखे पेट देखना ही ज्यादा पसंद करता है। हाँ, यह भी अवश्य परिवर्तन आया कि चैत आते ही अकाल दौरान बंद शादी-विवाह के समारोह एक बार फिर पुन: जाग्रत हो गए। हल्दी की रश्म तथा 'मटमंगरा' के गीत दलित बस्तियों में गूँजने लगे। ऐसे अवसरों पर —

'सोने की थारी में जेवना परोसो रामा,

जेवना ना जेवै हमार बलमा'

यह एक अत्यंत प्रचलित लोकगीत हुआ करता था, जिसे मटमंगरा से लेकर शादी के दिन तक लगातार गाया जाता था। इस दौरान दलितों की झोंपड़ियों की दीवारों पर कोहबर कलाकृतियाँ विभिन्न रंगों में उभड़कर अपना एक अलग ही सौन्दर्य बिखेरने लगती थीं। दीवार पर गेरू तथा हल्दी से जो पैंटिंग की जाती थी, उसे कोहबर कहा जाता था। ऐसी कलाकृतियों में केले का पेड़, हाथी, घोड़े, औरत, धनुष-बाण आदि शामिल होते थे। इन कलाकृतियों को 'कोहबर लिखना' कहा जाता था। चिट्ठी की तरह कोहबर लिखने के लिए भी गाँव वाले मेरी ही तलाश में रहते थे। अत: मैं जब तक गाँव में रहा, शादी किसी के घर हो, कोहबर मैं ही लिखता रहा। एक विशेष बात यह थी कि इन कोहबर कलाकृतियों का प्रचलन सवर्ण जातियों में नहीं था। इन परम्पराओं से जाहिर होता है कि सदियों से चला आ रहा दलितों का यह बहिष्कृत समुदाय एक अलौकिक कला एवं संगीत का न सिर्फ संरक्षक रहा, बल्कि उसका वाहक भी है। अशिक्षा के कारण लिपि का ज्ञान न होने के कारण दलित लोग संभवत: भारत के पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अभिव्यक्ति के लिए कोहबर पैंटिंग का सहारा लिया था। शादी-विवाहों के इन अवसरों पर भाँड़ मंडलियों या नौटंकियों का आयोजन दलितों के बीच एक आम बात थी। इन अत्यंत आकर्षक मंडलियों या नौटंकियों में नाटक से लेकर गायक, तबलची, अभिनेता, स्वांग आदि कोई प्रोफेशनल व्यक्ति नहीं, बल्कि यही अधपेटवा गुजारा करने वाले

हरवाहे हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर एक सिद्धहस्त कलाकार के रूप में उनकी प्रस्तुति से सदियों पुराने उनके दु:ख-दर्द कुछ समय के लिए हवा में उड़ जाते थे। मेरे ननिहाल तरवां के एक चचेरे मौसा थे, जो एक बड़े हाजिरजवाब स्वांग (यानी मसखरे) थे। इन भाँड़ मंडलियों में वे सामाजिक कु-रीतियों पर लोकशैली में तरह-तरह के व्यंग द्वारा प्रस्तुति को बहुत ही मार्मिक बना देते थे। उनका एक गीत मुझे आज भी स्मरण होते ही रोमांचित कर देता है जिसकी कुंछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं —

'हरिजन जाति सहै, दुख भारी हो।
हरिजन जाति सहै, दुख भारी॥
जेकर खेतवा दिन भर जोतली,
ऊहै देला गारी हो, दुख भारी
हरिजन जाति सहै, दुख भारी हो॥'

इसी तरह बालविवाह जैसी कुरीतियों पर एक विरहा शैली में बड़ा ही लोकप्रिय गीत गाया जाता था, जिसकी इन पंक्तियों में बहुत गूढ़ तथ्य छिपे रहते थे, जैसे —

'बाबा विदा करौ लं लरिका क मेहरिया
रहरिया में बाजै घुंघरू॥'

उपर्युक्त पंक्ति में छिपा गूढ़ रहस्य यह है कि गाँवों में अरहर के साथ उस जमाने में हमेशा सनई की भी फसल मिलाकर तैयार की जाती थी। सनई से पटसन बनता था तथा उसके फूल का साग बहुत स्वादिष्ट होता था। इसमें मूँगफली जैसी सैकड़ों फलियाँ लग जाती थीं, जिनके अंदर तीसी की तरह बीज भरे रहते थे। सनई की ये फलियाँ जब पककर सूख जाती थीं, तो उनके तने जरा भी किसी चीज के स्पर्श से हिल जाते तो यकायक इनके पूरे पेड़ से सैकड़ों घुंघरू जैसी खनक गूँज उठती थी। उपर्युक्त लोकगीत में छिपा हुआ रहस्य यह है कि बालविवाह से उत्पन्न कुरीति के कारण बालक दूल्हे की जवान पत्नी को उसका ससुर अरहर और सनई की संयुक्त खड़ी फसल के बीच से जाने वाले रास्ते से विदा कराकर ले जा रहा है। अत: सामाजिक रूप से अमान्य व्यवहार के स्पर्श से गहन फसल के बीच सनई के पौधों से घुंघरू की गूँजती आवाजों से सारा रहस्य उजागर हो जाता है। 'गीत गोविन्दम्' में जयदेव द्वारा वर्णित कृष्ण के शारीरिक स्पर्श से राधा के पैरों में बंधी पायल के खनक जाने से जो रहस्य खुल जाता है, उससे कहीं ज्यादा सौन्दर्यशास्त्रीय रहस्य इन अधपेटवा दलितों की सनई से उजागर हो जाता है। इस प्रकरण में सनई की फलियाँ राधा के पायल से कहीं ज्यादा खनकती नजर आती हैं। ऐसे ही पति के बूढ़े होने की शिकायत करती युवती का विरह इस लोकगीत में प्रस्फुटित हो जाता था —

'कइसे सपरी हो भैया कइसे सपरी
मीलल हमके बूढ़वा भतार,
भैया कइसे सपरी,
होइहैं कइसे बेड़ा पार
भैया कईसे सपरी॥'

इसी प्रकार इन नाच मंडलियों में दलित समाज में किसी भी नई चीज को अंधविश्वासों के दबाव में न स्वीकारने की भावना भी परिलक्षित होती रहती थी। उदाहरण के लिए जब सरकार अंग्रेजी डॉक्टरों को ग्रामीण क्षेत्रों के कस्बाई दवाखाने भेजने लगी तो दलित उनसे इलाज कराने में हिचकते थे। इसलिए वे अपने लोकगीतों में इन डॉक्टरों का मजाक अपनी बीमार बकरियों के माध्यम से उड़ाने लगते थे। जैसे —

'हे डकडर बाबू बेमार भइली बकरी।
संझिया क चरि के अइली खेतवा में लतरी॥
हे डकडर बाबू बेमार भइली बकरी॥'

इन लोककला मंडलियों में लैला-मजनू, शीरी-फरहाद, सुल्ताना डाकू आदि जैसे नाटकों का मंचन भी दलित कलाकार बहुत आकर्षक ढंग से करते थे। इन सभी नाटकों का अंत एक विचित्र समापन शैली में होता था। मूल नाटक के खत्म होते ही मुख्य कलाकार मंच पर आकर अपने दोनों हाथों को कमर पर रखकर दाएँ-बाएँ हिलाते हुए नृत्य शैली में 'मोहे ले चल रे-मोहे ले चल' गाने लगता था। कुतूहलवश एक के बाद एक सारे कलाकार बारी-बारी से मंच पर आते और सभी वैसा ही करना शुरू कर देते थे। ऐसा लगता था कि 'मोहे ले चल रे-मोहे ले चल' कोई छूत की बीमारी थी जो सबको लग जाती थी। इतना ही नहीं, अंततोगत्वा दर्शक भी 'मोहे ले चल रे-मोहे ले चल' गाने लगते थे। इस तरह, इस लोककला में दर्शक विलुप्त हो जाते थे। इस कड़ी में बरात प्रस्थान के समय एक खास किस्म का नृत्य किया जाता था, जिसे 'टुक्कड़' कहते थे। यह बहुत शक्तिशाली नृत्य होता था। इसमें सिर्फ दो कलाकार एक दफलावादक तथा दूसरा दुक्कड़ची नर्तक होता था, दफले की जोरदार लक्कड़ ध्वनि पर नाचने वाला व्यक्ति गोलाकार आवृत्त में नाचते हुए तरह-तरह की कलाबाजियाँ दिखाता रहता था। इन कलाबाजियों में उसका मुकाबला दफलची स्वयं करता था। मेरे दादा के छोटे भाई के बड़े बेटे सुन्नर काका सिद्धहस्त दुक्कड़ची थे। ऐसे ही एक नाच हुआ करता था 'हूड़क' की ध्वनि पर कहंरउवा। हूड़क डमरू की आकृति वाला उससे कापी बड़ा वाद्य होता था जिसे कलाकार अपनी बाँह के नीचे काँख में दबा लेता था तथा उसे अपनी केहुनी से बजाता था। यह बड़ गजब का वाद्य होता था जिससे बहुत सुरीली कहरवा शैली में आवाज निकलती थी। वादक स्वयं जो कुछ गाता था, उसके बीच-बीच में 'दहि दहि दे-दहि दहि दे' नामक तकियाकलाम भी ठोक देता था। हूड़क वाले का 'दहि दहि दे' अत्यंत आकर्षक होता था। उस जमाने में भी इस शैली वाले कलाकार बहुत कम मिलते थे। आज के जमाने में तो वे सम्भवत: विलुप्त ही हो गए हैं। मैं इन नाच मंडलियों तथा लोककलाओं के पीछे एक तरह से पागल-सा हो गया था। अत: दूर-दूर तक गाँवों में मैं रात भर घूम-घूमकर इन्हें देखने-सुनने जाया करता था। अक्सर मैं इन नाचों को देखने के बाद देर रात हो जाने के कारण उन्हीं गाँवों के मैदानों तथा खलिहानों में भूसा फैलाकर बरातियों के साथ सो जाता था तथा सुबह होते ही घर वापस आता था, जिसके कारण घर पर मुझे भीषण गालीयुक्त अपमान से जूझना पड़ता था। एक रोचक बात यह थी कि इस तरह की सारी लोककलाएँ सिर्फ दलितों के बीच ही केन्द्रित थी। सवर्ण जातियों में किसी तरह की लोककला मौजूद नहीं होती थी। शायद यही कारण था जिसके चलते इन कलाओं के साथ जातिसूचक विशेषण जुड़ गए थे जैसे — चमरउवा नाच या गाना, धोबियउवा नाच, कहैरउवा धुन, गोड़इता नाच (हूड़क के साथ) आदि।

शब्दार्थ-टिप्पणी

हेरतअंगेज आश्चर्य जनक **जरई** धान के बीज जिसमें अंकुर फूटे हों **सिरकी** सरकंडा **खानाबदोश** गृहहीन **अजनबी** अपरिचित, अनजान

मुहावरे

मातम छा जाना शोकमग्न होना

स्वाध्याय

1. उत्तर दीजिए :

(1) किस भाषा के ज्ञान ने लेखक को अन्य ग्रह का मानव बना दिया था?

(2) हेंगा या पाटा कैसे बनाया जाता था?

(3) लेखक को अति निर्दयी पापी होने की अनुभूति क्यों हुई?

(4) दलित बस्ती क्यों जीवंत हो उठी थी?

(5) नट लोग गाँव में क्या करते थे?

2. उत्तर लिखिए :

(1) कृषि प्रदर्शनी के बारे में बताइए।

(2) दलित बस्ती में खुशी का माहौल क्यों था?

(3) कोहबर के विषय में लेखक ने क्या बताया है ?

(4) दलितों के दु:ख-दर्द का वर्णन पाठ के आधार पर कीजिए।

योग्यता-विस्तार

- 'मुर्दहिया' आत्मकथा ढूँढ़कर पढ़िए।
- 'अस्पृश्यता सामाजिक बुराई है' - विषय पर कक्षा में चर्चा कीजिए।

●

जनसंचार माध्यम : परिचय

'संचार माध्यम' जनसंचार का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। जनसंचार माध्यम अर्थात् जन-जन तक घटनाओं, विचारों और नित्य की गतिविधियों की जानकारी पहुँचानेवाला माध्यम? 'संचार माध्यम' शब्द 'संचार' और 'माध्यम' शब्दों के योग से बना है। संचार से अभिप्राय संप्रेषण की संपूर्ण प्रक्रिया से है। जिसमें उद्देश्यपूर्ण और सार्थक अनुभवों, व्यवहारों और आवश्यकताओं का परस्पर आदान-प्रदान होता है। आदान-प्रदान की प्रक्रिया व्यक्ति के व्यवहार को परिमार्जित और प्रभावित करती है।

इस प्रकार संचार माध्यम संप्रेषक और श्रोता को जोड़नेवाला साधन है। इस माध्यम ने सारे विश्व की भौगोलिक दूरियाँ काफी कम कर डाली हैं। जिससे व्यक्ति समग्र विश्व मानव समाज के परिप्रेक्ष्य में अपनी सोच को नई दिशा देने लगा है? अतएव प्रिन्ट और इलैक्ट्रोनिक जन माध्यमों ने व्यक्ति में विश्व नागरिक बनने का स्वप्न अंकुरित कर दिया है। जनसंचार माध्यम के प्रमुख साधन हैं - समाचार पत्र, रेडियो, दूरदर्शन, इन्टरनेट आदि।

व्यक्ति स्वयं को व्यक्त करना चाहता है और आसपास की हलचलों के विषय में जानना चाहता है। संचार माध्यम की भूमिका इसमें बहुआयामी है। संचार माध्यम हमारे भावों, विचारों और बहुमुखी सर्जनात्मक गतिविधियों को व्यापक जन समूह तक पहुँचाने का कार्य करता है। व्यक्ति से व्यक्ति को जोड़ता है। व्यक्ति, समाज, देश और राष्ट्र को विश्व समाज से जोड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति और विश्व समाज एक दूसरे के पूरक बनने जा रहे हैं।

मनुष्य की संचार यात्रा में नये-नये माध्यम शामिल होते जा रहे हैं। 'संचार' की इस दृष्टि से विराट भूमिका है। संचार सीधे विकास से जुड़ा है। वह देश के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास में निर्णायक भूमिका निभाता है। संचार का उद्देश्य है सामाजिक परिवर्तन की मानसिकता को तैयार करना।

संचार का आरंभिक काल

संचार का प्राथमिक माध्यम 'चित्र' था। चित्र अनुभवों की अभिव्यक्ति के माध्यम बने। आदिमानव के गुफा चित्र इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। मानव शिकार जीवन से कृषि जीवन तक पहुँचा तो संचार बोध ने रंग, नृत्य, संगीत और कथाओं को जन्म दिया। संचार यात्रा में 'लिपि' के आविष्कार ने नई दिशा दी। नये रंग और भाव, कलाएँ उभरने लगीं। अजन्ता-एलोरा की चित्रकला और मूर्तिकला संचार क्षमता के सशक्त माध्यम बने। कर्नाटकी संगीत और हिन्दुस्तानी संगीत ने दक्षिण और उत्तर भारत को जोड़ा। इस प्रकार भरतनाट्यम, कथक, कुचिपुड़ी, कथकली, मणिपुरी, ओडिसी, यक्षगान-नृत्यों ने सम्पूर्ण भारत को भावनात्मक नृत्य सांस्कृतिक दृष्टि से एकजुट बनाया। इस प्रकार महाराष्ट्र का तमासा, उत्तरप्रदेश की नौटंकी, गुजरात की भवाई, राजस्थान की फड़, कबीर की साखियाँ आदि ने लोक संचार माध्यम के रूप में कार्य किया। कीर्तन, कव्वाली, कठपुतली, स्वाँग, बाइस्कोप आदि इसी परम्परा के संचार माध्यम हैं। ग्रामीण समाज में जन-जागरण के ये सशक्त माध्यम सिद्ध हुए हैं।

नगर और ग्रामीण समाज में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय उत्सव रचनात्मक तथा प्रभावशाली जनसंचार सिद्ध हुए हैं। जैसे- होली, दशहरा, ईद, गणेश उत्सव, नवरात्रि, दुर्गापूजा, क्रिसमस, वैशाखी, पोंगल आदि।

संचार माध्यमों के आधुनिक रूप

समाज के विकास के साथ-साथ संचार प्रक्रिया वैविध्यपूर्ण और व्यापक होती चली गई। औद्योगिक क्रान्ति और नये आविष्कारों ने संचार माध्यमों में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। पंद्रहवीं शताब्दी में प्रिंटिंग मशीन-आविष्कार और पुस्तक प्रकाशन-इसका प्रारंभिक दौर था। सत्रहवीं शताब्दी में अखबार अस्तित्व में आया। जिसने सूचनाओं के आदान-प्रदान को नई गति प्रदान की। ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, शासन-व्यवस्था हेतु नए-नए द्वार खोल दिए जन हृदय लोकतन्त्र, समानता, स्वतन्त्रता और न्याय के बीज बोने आरंभ कर दिए। प्रिन्ट माध्यम ने जनता को नई-दृष्टि और स्वप्न दिए। जन-जन तक समाचार पत्र पहुँचते ही नई चेतना अंकुरित होने लगी। सार्वजनिक सवालों पर चर्चा शुरू हुई। अन्याय के सामने क्रान्ति हुई। पुस्तकों ने भी उसमें क्रान्तिकारी भूमिका निभाई।

लोकतन्त्र में जनसंचार का विशेष महत्त्व है। निर्वाचित जन प्रतिनिधि क्या कर रहे हैं ? सरकार की नीतियाँ जन विरोधी हैं या हितकारी ? समाज के सामने कौन-सी चुनौतियाँ हैं ? अर्थात् वैश्विक स्तर पर प्रत्येक घटना देश, समाज और व्यक्ति को प्रभावित कर रही है। ऐसी स्थिति में प्रिन्ट और इलैक्ट्रॉनिक जन माध्यमों ने व्यक्ति में वैश्विक भावना को जन्म दिया।

आधुनिक जनसंचार माध्यमों के प्रमुख प्रकार

1. मुद्रण माध्यम (प्रिन्ट मीडिया) : इस माध्यमों में मुद्रित पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ एवं जनोपयोगी मुद्रित सामग्री का समावेश होता है। मुद्रण माध्यम को जनसंचार माध्यमों के प्रवर्तक के रूप में देखा जा सकता है।

2. प्रसारण माध्यम (रेडियो) : यह श्रव्य प्रसारण माध्यम है। देश-विदेश में इसका जाल बिछा हुआ है। प्रसारण माध्यम के प्रारंभिक रूपों में टेलीफोन, टेलीग्राफ, चलती-फिरती एवं स्थिर फोटोग्राफी तथा साउन्ड रिकार्डिंग व्यापक हुए, बाद में इन माध्यमों की प्रौद्योगिकी अस्तित्व में आई।

3. चलचित्र (फिल्म) : चलचित्र माध्यम की शुरुआत 19वीं सदी में हुई। समाज में मनोरंजन तथा जन-जागरण का यह एक सशक्त माध्यम सिद्ध हुआ। 'प्रदर्शन व्यापार' की शुरुआत हुई। फिल्म स्टूडियो और सिनेमाघरों का निर्माण हुआ। विश्व में बॉलिवुड (भारत) और हॉलिवुड (अमरीका) फिल्म निर्माण के प्रमुख केन्द्र हैं।

4. रिकार्ड संगीत माध्यम (रिकार्डेड म्यूजिक) : इसका आविष्कार 1880 ई. के आसपास हुआ। इसने सारे विश्व में युवावर्ग को अधिक आकर्षित किया। इस माध्यम के अन्तर्गत - फोनोग्राम, रिकार्ड प्लेयर, ऑडियो कैसेट प्लेयर, काम्पेक्ट डिस्क प्लेयर्स, वीडियो कैसेट रिकार्डर (वी.सी.आर.) आदि प्रमुख हैं।

5. नव इलैक्ट्रॉनिक माध्यम (दूरदर्शन) : दूरसंचार और सूचना तंत्र पर आधारित जनमत और जनछवि को प्रभावित करनेवाला सर्वाधिक सशक्त माध्यम है। इसकी पहचान टेलीविजन के रूप में प्रसिद्ध है। भारत में 'दूरदर्शन' के नाम से यह माध्यम लोकप्रिय है। पहले टेलीविजन माध्यम मात्र सरकारी क्षेत्र तक सीमित था। अब अनेक निजी चैनल इस क्षेत्र में कार्यरत हैं। इस माध्यम ने सारे विश्व को हमारे घरों में समेट दिया है। विश्व की पल-पल की सूचनाएँ इस माध्यम से सुलभ होती रहती हैं। विश्व ज्ञान-विज्ञान हेतु यह माध्यम वरदानरूप सिद्ध हुआ है।

6. इन्टरनेट : यह माध्यम टेलीविजन से अधिक तेज़गति का होने से संचार की दुनिया में इसने कापी हलचल पैदा की है। पत्रकारिता के क्षेत्र में एक स्वतन्त्र विधा के रूप में पहचान बना चुका है। आज ऑनलाइन पत्रकारिता, साइबर पत्रकारिता, पोर्टल पत्रकारिता जैसे शब्द मीडिया में बहुप्रचलित हैं। विश्वभर की पत्र-पत्रिकाएँ एवं प्रसिद्ध पुस्तकें इन्टरनेट पर उपलब्ध हैं। सर्वजन सुलभ न होने से ये माध्यम रेडियो तथा टेलीविजन जैसे लोकप्रिय नहीं हो पाए हैं, इलैक्ट्रॉनिक तथा कम्प्यूटर इसके मुख्य वाहक हैं।

7. कनवरजेंस (अभिसरण माध्यम) : कनवरजेंस आधुनिक जनसंचार माध्यम के रूप में प्रचलित हुआ है। यह माध्यम कई विविधतापूर्ण माध्यमों का 'पुंज' या 'समायोजन' है। जिसमें आपके और टेलीविजन के बीच दो तरफा संवाद स्थापित हो सकेगा। आपके कम्प्यूटर और मोबाइल फोन में एक साथ कई प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध हो पाएँगीं।

नित नई बदलती प्रौद्योगिकी ने जनसंचार माध्यमों में अनंत संभावनाएँ पैदा कर दी हैं।

समाचार पत्र

समाचार पत्र वर्तमान जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है। यह हमें विश्व की छोटी-बड़ी घटनाओं का प्रामाणिक ब्यौरा और जानकारी देता है। इस दृष्टि से उसकी भूमिका मानवता का दैनिक इतिहास उल्लेखित करने में महत्त्वपूर्ण है।

समाचार पत्र : उद्भव और विकास

भारत में पहला छापाखाना कोलकाता में सन् 1775 में स्थापित हुआ। 1780 में अंग्रेजी में एक गजट निकाला गया। सन् 1818 में पहला बंगला अखबार 'दिग्दर्शन' निकला। हिन्दी का प्रथम समाचार 'उदंत मार्तंड' 30 मई, 1826 कोलकाता से प्रकाशित हुआ। बाद में वाराणसी, आगरा, लखनऊ, मुंबई और प्रयाग से प्रकाशित होने लगे। सन् 1854 में हिन्दी का प्रथम दैनिक समाचार पत्र 'सुधा वर्षण' कोलकाता से प्रकाशित हुआ। सन् 1868 में अंग्रेजी शासन के कोप का शिकार बनने से बंद हो गया। आगे चलकर 'समाचार दर्पण', 'समाचार चन्द्रिका', 'ज्ञानदीपक', 'मालवा अखबार', 'हिन्दी प्रदीप', 'सरस्वती',

'नवप्रभात', 'भारत मित्र', 'देवनागरी प्रचारक', 'बनारस अखबार' आदि अखबार एवं पत्रिकाएँ समाचारों के साथ ही ज्ञान, जागृति, प्रगति, साहित्य आदि द्वारा राष्ट्रीय एवं जातीय चेतना, युगबोध और आर्थिक स्थिति-विवरण द्वारा जन मानस को प्रभावित करने लगे थे।

सन् 1868 में काशी से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'कविवचन सुधा', का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह पत्रिका साहित्यिक थी, साथ ही राजनीतिक और सामाजिक सुधार में उन्मुख थी।

20वीं शताब्दी का प्रारंभ हिन्दी पत्रकारिता के विकास और विस्तार का काल था। राजनीतिक नेतृत्व, पत्रकारिता, सामाजिक सुधार की दिशा में बाबूराव विष्णु पराड़कर, गणेश शंकर विद्यार्थी, माखनलाल चतुर्वेदी, मुंशी प्रेमचन्द, पण्डित मदन मोहन मालवीय, लाला लाजपतराय जैसे राष्ट्रीय नेता और साहित्यकार एकजुट हो संलग्न हो गये थे। संकुचित दायरों से ऊपर उठ, ये राष्ट्रीय भावना और एकता के लिए प्रेरणादायी भूमिका अदा कर रहे थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद समाचार पत्रों की संख्या में वृद्धि हुई परन्तु उच्च उद्देश्यों का स्थान व्यावसायिकता ने ले लिया। मुद्रण प्रौद्योगिकी ने नई चुनौतियों को जन्म दिया। हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, जनसत्ता, पंजाब केसरी, अमर उजाला, राष्ट्रीय सहारा आदि समाचार पत्रों से जो अपेक्षाएँ थीं वे नहिंवत् पूरी हुईं, यद्यपि हिन्दी पाठकों में वृद्धि हुई है।

समाचार पत्र के विभिन्न अंग

संपादक के निर्देशन में सहायक संपादक, समाचार संपादक, विशेष संवाददाता, संवाद दाता तथा उपसंपादक अखबार की सामग्री एकत्र करते हैं। अन्य अनेक विभाग अलग-अलग पृष्ठों को प्रस्तुत करने का दायित्व निभाते हैं।

अखबार का केन्द्र बिन्दु मुख्य डेस्क होता है जिस पर प्रथम पृष्ठ प्रस्तुत करने का दायित्व होता है। संपादक के निर्देशन में डेस्क का प्रमुख मुख्य उपसंपादक होता है। राष्ट्रीय महत्त्व की खबरें समाचार संपादक के माध्यम से इसी डेस्क पर आती हैं। खबरों की गुणवत्ता के आधार पर उसे प्राथमिकता दी जाती है। मुख्य उपसंपादक एवं सहयोगी संपादक संपादन के बाद खबरों का तथ्य, भाषा और शैली की दृष्टि से उसका शीर्षक निश्चित करते हैं तब छपने की प्रक्रिया में भेजा जाता है।

समाचार क्या है

समाचार अर्थात् पर्याप्त संख्या में लोग जिसे जानना चाहें, परन्तु वह सुरुचि एवं प्रतिष्ठा का निर्वाहक होना चाहिए। कुछ पत्रकारों के अनुसार कोई भी घटना जिसमें मानव मात्र की दिलचस्पी हो, वह समाचार है। अर्थात् अनेक व्यक्तियों की अभिरुचि जिस सामयिक बात में होती है, वह समाचार है। सर्वश्रेष्ठ समाचार वह है जिसमें अधिकतम लोगों की रुचि हो।

प्रत्येक पत्रकार के लिए समाचार की इन केन्द्रीय विशेषताओं की जानकारी की समझ ही 'समाचार बोध' है जिसे 'न्यूज सेंस' भी कहते हैं। 'समाचार बोध' की विशेषता के आधार पर समाचार संपादक, मुख्य उपसंपादक खबर को प्राथमिकता देता है और उसके स्वरूप को तय करता है। समाचार बोध के आधार उनके प्रकाशन का स्थान और स्वरूप तय होता है।

समाचार संपादक

समाचार संपादक का दायित्व विभिन्न डेस्कों द्वारा चयन किए गए समाचारों के लिए होता है। वह प्रत्येक पृष्ठ की सामग्री के बीच समन्वय का काम करता है। विशेष संवाददाता द्वारा दी गई खबरों के विषय में निर्णय लेता है। उसका मुख्य दायित्व है प्रथम पृष्ठ के मुख्य समाचार के शीर्षकों पर ध्यान देना। विभिन्न पालियों के उपसंपादकों के कार्य का विभाजन, संवाद समिति की खबरों का समन्वय, प्रशासकीय जिम्मेदारी तथा संस्करण का समय पर छपना आदि प्रमुख कार्य हैं।

विशेष संवाददाता

नियमित खबरों से भिन्न समाचार लाने का काम विशेष संवाददाता का होता है। केन्द्र सरकार के मंत्रालयों और विभिन्न राज्यों की निर्णायात्मक गतिविधियों की खबरें लाना मुख्यत: विशेष संवाददाता का दायित्व होता है।

संसद-समाचार भी प्राय: विशेष संवाददाता लिखता है। समाचार ब्यूरों में भी विशेष संवाददाता ही काम करते हैं। विशेष संवाददाता खबर लिखकर ब्यूरो चीफ को देता है। ब्यूरो चीफ निरीक्षण के बाद मुख्य डेस्क पर संपादन तथा प्रकाशन के लिए भेज देता है।

संपादन के नियम

उपसंपादकों को समाचार संपादन करते हुए आवश्यक नियमों का पालन करना होता है।

सबसे अधिक समाचार की स्पष्टता और भाषा की सरलता पर ध्यान देना पड़ता है। आम आदमी खबर को समझ सके, इसका ध्यान रखना पड़ता है।

खबर की स्पष्टता के लिए वह प्रत्येक खबर में छः प्रश्नों के उत्तर देने की कोशिश करता है। जिसे अखबार की दुनिया में 'छ:ककार' कहा जाता है। 'छ:ककार' हैं–क्या, कब, कहाँ, क्यों, कौन और कैसे ? पाठक खबर में क्रमशः इन प्रश्नों का उत्तर पाना चाहता है ? खबर में इन ककारों का उत्तर न होने से खबर को सम्पूर्ण नहीं कहा जा सकता। खबर की घटना का वृत्तांत लिखने का क्रम होता है : क्या घटना हुई ? कब हुई ? कहाँ हुई ? क्यों हुई ? कौन उसमें शामिल था ? अंत में घटना कैसे घटी ? उदाहरणार्थ:

''मुजफ्फरपुर, 23 दिसम्बर। वैशाली एक्सप्रेस के तीन डब्बे पटरी से उतर गए जिससे 30 यात्री बुरी तरह घायल हो गए हैं। दुर्घटना दिन में एक बजे रामदयाल नगर स्टेशन के पास हुई। घने कुहरे की वजह से ड्राइवर को सिग्नल के संकेत का पता नहीं चला था। घायलों में दस महिलाएँ और बारह बच्चे हैं। घायलों को नगर के सदर अस्पताल में भर्ती करा दिया गया है।''

रेलवे प्रवक्ता ने बताया कि धुंध में सिग्नल का संकेत न देखकर ड्राइवर ने अतिरिक्त सावधानी बरतते हुए गाड़ी रोकने की पूरी कोशिश की। इसके बावजूद तीन डिब्बे पटरी से उतर गए। इसी स्टेशन के पास पिछले साल भी कुहरे की बजह से एक भारी रेल दुर्घटना होते-होते बची थी। उस समय पटरी पर किसी असामाजिक तत्व ने बड़े पत्थर रख दिए थे जिसे ट्रेन का ड्राइवर दूर से नहीं देख पाया था।...

खबर के प्रथम हिस्से में छहों ककारों – **क्या** ? रेल दुर्घटना, **कब** ? 23 दिसम्बर से एक दिन पहले, **कहाँ** ? रामदयाल नगर स्टेशन, **क्यों** ? सिगनल संकेत का पता न लगने की वजह से, **कौन** महिलाएँ और बच्चे – उत्तर मिल जाते हैं। इनमें आमुख, शीर्षक और लीड प्रमुख हैं।

आमुख : समाचार के आरंभिक भाग को आमुख कहते हैं। जिसमें अधिकतम ककारों का उत्तर होता है। आमुख पढ़ने से पूरी खबर की झलक मिल जाती है। अर्थात् चार-पाँच पंक्तियों में खबर का सार होना चाहिए।

'आमुख' को अंग्रेजी में इनट्रोडक्सन कहते हैं। 'इन्ट्रो' उसका संक्षिप्त रूप है। कुछ लोग इसे मुखड़ा भी कहते हैं। आमुख समाचार का केन्द्रबिंदु होता है। खबर की विषयवस्तु को ध्यान में रखते हुए प्रमुखत: तथ्यात्मक और भावनात्मक आमुख लिखे जाते हैं। छ:ककारों के आधार पर तथ्यात्मक आमुख लिखे जाते हैं। यदि खबर संवेदनात्मक है तो भावात्मक आमुख भी लिखे जाते हैं। जैसे श्रीमती इन्दिरा गांधी की मृत्यु पर राजस्थान पत्रिता (4 नवम्बर 1984) में तथ्यात्मक आमुख–

नई दिल्ली, 3 नवंबर। श्रीमती इंदिरा गांधी जो 16 वर्ष तक देश की भाग्य-विधाता रहीं, उनका आज यमुना किनारे वैदिक मंत्रोच्चार के साथ अंतिम संस्कार कर दिया गया।

नवभारत टाइम्स ने श्रीमती गांधी के निधन पर भावात्मक आमुख लिखा –

''नई दिल्ली। मर्माहत देश ने भरे हुए दिल और छलकती आँखों से अपनी लोकप्रिय नेता को अलविदा कहा।''

शीर्षक

शीर्षक खबर का प्राण होता है। आमुख के आधार पर शीर्षक बनाया जाता है। छ: ककारों के अन्तर्गत दिए गए उदाहरण के आधार पर प्रभावी शीर्षक हो सकता है।

वैशाली एक्सप्रेस पटरी से उतरी : 30 घायल

शीर्षक बोलचाल की भाषा में हो, मुहावरे का प्रयोग उसे अधिक आकर्षक बना देता है। संक्षिप्तता उसका बहुत बड़ा गुण हैं।

लीड : अखबार के पहले पन्ने पर कौन-से समाचार प्रमुख अथवा 'लीड' होंगे, इसका चयन मुख्य संपादक करता है। 'लीड खबर' वही होगी जो राष्ट्रीय जीवन में घटनेवाली घटनाओं की परम्परा में नई हो तथा जिसमें अधिकतम लोगों की रुचि हो।

समाचार पत्र के पहले पन्ने पर फोटो का चयन भी कई बार 'लीड' से जुड़ा हुआ होता है। अखबार का अपना फोटो विभाग तथा कार्टूनिस्ट होता है जो तात्कालिक राजनीतिक-सामाजिक स्थिति को उजागर करते हैं।

प्रथम पृष्ठ के बाद अखबार का दूसरा पन्ना उस नगर या महानगर की खबरों का होता है, जहाँ से वह निकलता है। महानगर संस्करण मूलतः संवाददाता की खबरों के आधार पर निकलता है। अखबार में नगर या महानगर का एक डेस्क भी होता है। उसका दायित्व प्रधान मुख्य संपादक निर्वाह करता है।

अच्छे संवाददाता की विशेषता होती है कि वह आम जन-जीवन से जुड़ी खबरें लाता है। संवाददाताओं के कार्यक्षेत्र बँटे होते हैं। जैसे अपराध क्षेत्र, शिक्षा, राजनीति, नगरपालिका आदि।

समाचार के प्रमुख स्रोत

समाचार के प्रमुखे स्रोत हं - मन्त्रालय, अस्पताल, पुलिस मुख्यालय, प्रेस विज्ञप्ति, संवाद समितिया। इनके अलावा विभिन्न आयोजनों के प्रमुख संवाददाता सम्मेलन कर, समाचार की जानकारी देते हैं।

संवाददाता सम्मेलन

प्रेस सम्मेलन का आयोजन सरकारी प्रमुख मंत्रालय, राजनीतिक दल, पुलिस आयुक्त तथा विभिन्न संस्थाओं के प्रधान आयोजित करते हैं। संवाददाताओं को बुलाकर खबर देते हैं। संवाददाता प्रश्न पूछकर, उत्तरों के आधार पर खबर बनाता है।

संवाद समितियाँ

संवाददाता समाचार पत्र के लिए खबरें एकत्र करते हैं। जो महत्त्वपूर्ण खबरें संवाददाताओं से छूट जाती हैं, उन्हें समितियों से ले लिया जाता है। हमारे देश में 'यूनीवार्ता' और 'भाषा' - हिन्दी की दो प्रमुख समाचार समितियाँ हैं। अंग्रेजी में 'यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (यू.एन.आई.)' तथा 'प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पी.टी.आई.)' हैं।

नगर के पन्ने में प्रायः स्थानीय जन-जीवन की धड़कनें होती हैं। अन्तरराष्ट्रीय खबरों का भी एक विशेष पन्ना होता है। जिसके लिए अलग डेस्क होता है जो विदेशों में नियुक्त अपने संवाददाता और संवाद समितियों के आधार पर पृष्ठ का निर्माण करते हैं। अखबार में एक प्रादेशिक डेस्क भी होता है, जिसमें प्रमुख नगरों में नियुक्त संवाददाताओं की खबरें संपादित कर दी जाती हैं।

संपादकीय पृष्ठ

एक अच्छा संपादक तमाम दबाओं के बावजूद अखबार का संपादन जनहित में करता है। आम पाठकों की रुचि को ध्यान में रखते हुए उन्हें विश्व की नवीनतम सूचनाओं एवं विचारों से समृद्ध करता है। संपादकीय बैठक में देश-विदेश की ताजा घटनाओं पर विश्लेषण के बाद संपादकीय विषय तय होने पर संपादक उन्हें विभिन्न सहायक संपादकों से लिखने के लिए कहता है।

संपादकीय संपादकीय में पिछले दिन घटी प्रमुख राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर वैचारिक टिप्पणी होती है। उसमें घटनाओं के मर्म का विश्लेषण और आगामी प्रभाव का विवेचन किया जाता है। संपादकीय के अलावा उसी पृष्ठ पर प्रासंगिक विषय पर प्रमुख लेख भी प्रकाशित किया जाता है। इसी पृष्ठ पर मनोरंजनार्थ स्तंभ, पाठकों के पत्र भी होते हैं। पाठकों के पत्र संवाद का काम करते हैं, जिससे समाचार पत्र जीवन्त बनता है।

डायरी

'डायरी' में दैनिक कार्यों का विवरण होने से हिन्दी में इसे 'दैनंदिनी' कहा जाता है। डायरी को जीवन की खुली पुस्तक माना जाता है। डायरी शैली का प्रयोग कहानी तथा उपन्यास विधा में भी किया जाता है। कितने ही समाचार पत्रों में धारावाहिक डायरी-स्तंभ दिया जाता है। जिसमें पाठकों की रुचि को केन्द्र में रखा जाता है। डायरी के रूप में लिखने से औत्सुक्य बना रहता है। घटित घटनाओं की जानकारी डायरी के रूप में देने से विश्वसनीयता बढ़ती है और औचित्य निर्वाह में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। डायरी में तथ्यात्मक एवं अन्तरंग विवरण होने से रोचकता और मार्मिकता बनी रहती है।

फीचर

अखबार का अंतिम पृष्ठ अथवा संपादकीय पृष्ठ के बाद फीचर दिया जाता है। जिसमें बालवाड़ी, नारी जगत, फिल्म, कला, पुस्तकें आदि से संबंधित सामग्री होती है। 'फीचर' अंग्रेजी का शब्द है, इसका शाब्दिक अर्थ है आकृति, रूपरेखा, लक्षण

या विशेषता। अखबार में फीचर रोचक विषय पर मनोरंजक शैली में लिखे आलेख को कहते हैं। इनमें तथ्य एवं भावना का समन्वय होता है।

रिपोर्ताज

'रिपोर्ताज' में तथ्यात्मक अनुशासन की अपेक्षा रिपोर्ट में भावनात्मक और ऐन्द्रिकता को प्रमुखता दी जाती है। यों रिपोर्ताज फीचर का समान धर्मी है। हिन्दी में फणीश्वरनाथ रेणु के बाढ़ और सूखे से संबंधित वृतान्त रिपोर्ताज के श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

साक्षात्कार

फीचर पृष्ठ पर साक्षात्कार प्रमुखता से छापा जाता है। साक्षात्कार पढ़ने में पाठकों की विशेष रुचि होती है, उसमें महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों से सीधे मिलने का सुख प्राप्त होता है। साक्षात्कार मूलत: तीन प्रकार के होते हैं :

(1) साक्षात्कार में सीधे ही प्रश्नोत्तर होना। (2) बातचीत के आधार पर साक्षात्कार तैयार करना। तथा (3) फीचर, रिपोर्ताज और प्रश्नोत्तर का मिश्रण होना। तीसरे प्रकार का साक्षात्कार साहित्य के स्तर का होता है। इनमें व्यक्ति के विचार, व्यक्तित्व की विशेषताएँ, परिवेश और विचार साक्षात्कार द्वारा प्राप्त होते हैं। नवभारत टाइम्स में कुछ वर्ष पूर्व प्रथम पृष्ठ पर अटल बिहारी वाजपेयी, शिवराज पाटिल, इन्द्रजीत गुप्त आदि के ऐसे ही साक्षात्कार प्रकाशित हुए थे।

वाणिज्य एवं खेलकूद जगत का पृष्ठ

अखबार के अंतिम दो पृष्ठ व्यापार एवं खेल जगत के होते हैं। शेयरों की जानकारी,मण्डियों के भाव, उद्योग जगत आदि की विस्तृत खबरें होती हैं। इसी प्रकार खेल जगत की गतिविधियों के साथ खिलाड़ियों के आकर्षक चित्र और उनकी उपलब्धियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

जनसंपर्क और विज्ञापन

अखबार में विज्ञापन तथा जनसंपर्क का परिचय महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। अखबार विज्ञापनों से भरा होता है। जनसंपर्क अर्थात् व्यक्ति या संस्था द्वारा अपने पक्ष में वातावरण तैयार करने का सशक्त माध्यम। विधान-सभा, लोकसभा आदि के निर्वाचन के अवसर पर इनका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

व्यावसायिक संस्थान अपने उत्पादकों तथा कार्य कलापों को जनसंपर्क द्वारा व्यवसाय में वृद्धि करते हैं। अखबार टी.वी. चैनल तथा अन्य संचार माध्यमों में विज्ञापनों की भरमार इसीलिए अधिक दिखाई देती है। संचार माध्यमों के लिए विज्ञापन आय का सबसे बड़ा साधन है। कितने ही अखबार समाचार से अधिक विज्ञापनों के संकलन जैसे हो गये हैं। प्रेस आयोग की संस्तुति है कि पठनीय सामग्री और विज्ञापन अनुपात 60 और 40 का होना जरूरी है।

विज्ञापन प्रस्तुति मौलिक, आकर्षक, प्रभावी और सुरुचिपूर्ण हो जिससे उपभोगक्ता उत्पादन खरीदने में रुचि ले सकें।

रेडियो की दुनिया

रेडियो और टेलीविजन जनसंचार के प्रमुख इलैक्ट्रौनिक माध्यम हैं। ये दोनों माध्यम विश्व में घटित घटनाओं के साथ ही जन-जन तक सूचना, शिक्षा और मनोरंजन पहँचाते हैं।

रेडियो : अर्थ और स्वरूप

रेडियो सर्वसुलभ, सस्ता और सुविधाप्रद श्रव्य माध्यम है। नेत्रहीनों के लिए वरदान, किसान-मजदूरों तथा आम जन को विश्व के साथ जोड़ने का सशक्त साधन है। बिजली हो या न हो तब भी सुना जा सकता है।

'रेडियो' उस यंत्र का नाम है जो रेडियो-संकेतों को प्राप्त कर श्रोताओं तक पहुँचाता है। अमेरिका में पहले इसे रेडियो टेलीग्राम कहते थे, बाद में रेडियो कहा जाने लगा।

'रेडियो' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द 'रेडियस' से हुई है। जिसका तात्पर्य उस किरण या प्रकाश स्तंभ से है, जो आकाश में विद्युत चुंबकीय तरंगों द्वारा फैलती है। इन्हीं तरंगों द्वारा ध्वनि को एक जगह से दूसरी जगह भेजा जाता है। इन तरंगों की खोज 1886 ई. में जर्मन वैज्ञानिक हेनरिच हट्र्ज ने की थी। इसीलिए विद्युत तरंगों की गति मापने के लिए किलो हट्र्ज, मेगाहट्र्ज प्रयुक्त होता है। रेडियो सेटों पर KHZ (किलोहट्र्ज), MHZ (मेगाहट्र्ज) आदि संकेत अंकित होते हैं।

रेडियो : उद्भव और विकास

हट्र्ज ने विद्युत तरंगों की खोज की; पर दूरसंचार में उपयोग कर बताया 1891 ई. में गुगलियो मार्कोनी ने। उन्हें इंग्लैंड के कार्नवाल क्षेत्र के पोलधू स्थान से अटलांटिक महासागर पार कनाडा के न्यू फाऊंडलैन्ड स्थित सेंट जॉस की आवाज सुनने तथा अपनी बात दूसरी तरफ पहुँचाने में सफलता मिली।

इंग्लैन्ड में पहला रेडियो कार्यक्रम 23 फरवरी 1920 को प्रसारित किया गया। 1947 ई. में अमरीकन वैज्ञानिक राकले, ब्राटने तथा बार्डिन ने ट्रान्जिस्टर का आविष्कार कर इसे जनसाधारण का माध्यम बना दिया।

भारत में सन् 1921 टाइम्स ऑफ इण्डिया तथा डाक-तार विभाग के संयुक्त उपक्रम से मुंबई से एक कार्यक्रम प्रसारित किया गया। 1924 ई. में मद्रास में प्रेसीडेन्सी रेडियो क्लब की स्थापना की गई। 23 जुलाई 1926 को इण्डियन ब्रॉडकास्टिंग ने प्रसारण आरंभ किया। सन् 1936 में इसका नाम ऑल इण्डिया रेडियो रखा गया।

देश स्वाधीन होने पर सन् 1957 में इसका नाम '**आकाशवाणी**' हो गया। इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले मैसूर के प्राध्यापक गोपाल स्वामी ने प्रसारण केन्द्र के लिए किया था। जबकि हिन्दी जगत में यह नामकरण कविवर सुमित्रानंदन पंत द्वारा लोकप्रिय हुआ। भारत में आकाशवाणी की चार प्रमुख सेवाएँ हैं : राष्ट्रीय प्रसारण, विविध भारती, विदेशी सेवा और एफ.एम.सेवा।

रेडिया की विशिष्टताएँ

रेडियो एक श्रव्य माध्यम है। इसके द्वारा प्रसारित कार्यक्रम सुने जा सकते हैं, देखा नहीं जा सकता। इसीलिए इसे 'दृश्यहीन माध्ययम' कहा जाता है। सुनकर ग्रहण किए जाने के कारण रेडियो से प्रसारित होनेवाले कार्यक्रमों की प्रस्तुति और भाषा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बोलचाल की भाषा को प्राथमिकता दी जाती है। अतएव रेडियो हेतु आलेख-लेखन विषयक जरूरी तथ्य निम्नानुसार हैं :

श्रोताओं की कल्पनाशक्ति का उपयोग : रेडियो श्रवण का माध्यम होने से श्रोता अपनी कल्पना शक्ति के सहारे दृश्य बनाता है। राजा या राजसभा का वर्णन किया जाता है तो श्रोता स्व-कल्पना अनुसार उसकी वेशभूषा, आकार, भव्यता आदि दृश्य अपने मन में बनाता है। इसी कल्पना-शक्ति का उपयोग रेडियो के लिए लिखते समय उपयोग करना चाहिए।

सामायिकता का बोध : रेडियो वर्तमान का माध्यम है। रेडियो का आलेख उसी प्रवाह का वाहक होना चाहिए। श्रोताओं को वर्तमान का बोध कराया जाता है। आभास यों होता है जैसे सब कुछ उसी समय बताया जा रहा है, जबकि 'समाचार' और 'आँखों देखा हाल' का ही सीधा प्रसारण होता है।

लचीलापन : रेडियो एक निजी माध्यम है, जिसे एक जगह बैठकर ही नहीं; काम करते-करते भी सुना जा सकता है। रेडियो आलेख लिखते हुए बातचीत की भाषा अपनाई जाती है। श्रोता और प्रस्तुत कर्ता सीधे बात कर रहे हों ऐसा महसूस होना चाहिए। इस प्रकार रेडियो एक लचीला माध्यम है।

तत्परता : रेडियो दुनिया में घट रही घटनाओं की सूचना तुरन्त श्रोताओं तक पहुँचता है। मौसम और प्राकृतिक विपत्ति, रेलगाड़ी आवागमन, समारोहों की ताजा जानकारी रेडियो पर तुरन्त और कम खर्च में दूर-दराज के श्रेत्रों तक भेजी जा सकती है। इस प्रकार रेडियो एक तत्पर माध्यम है।

श्रोतावर्ग की पहचान

रेडियो आलेख तैयार करते समय श्रोतावर्ग की रुचि, मनोविज्ञान और ज्ञान के स्तर को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। श्रोता वर्ग के अनुरूप आलेख विधा, भाषा एवं विषय का चयन होगा। रेडियो के श्रोताओं में अपार विविधता होती है - बच्चे, बूढ़े, महिला, पुरुष, निरक्षर, साक्षर, बुद्धिजीवी-सभी प्रकार के होते हैं।

रेडियो लेखन के प्रमुख उपकरण

रेडियो श्रोताओं तक अपना संदेश शब्द, ध्वनि, संगीत और मौन द्वारा पहुँचाता है।

शब्द : शब्द श्रोता के मन में बिम्ब का निर्माण करते हैं।

ध्वनि : रेडियो में ध्वनि का विशेष महत्त्व है। ध्वनि के माध्यम से वातावरण का निर्माण किया जाता है। रेडियो नाटक में इसका उपयोग विशेष होता है। ध्वनि प्रभाव से प्रात:काल का अहसास कराना हो तो चिड़ियों की चहचहाट, मंदिर की घंटियों आदि का आयोजन, रेल्वे स्टेशन के लिए रेलगाड़ी की आवाज, 'चाय गरम चाय', शोर-गुल आदि प्रभावक रहता है।

संगीत : संगीत मनोरंजन का लोकप्रिय माध्यम है। रेडियो में प्रसारण सेवा की पहचान उसकी 'संकेत धुन' से होती है। रेडियो नाटक में दृश्य बदलने तथा खुशी या दु:ख का माहौल दर्शाने में संगीत का उपयोग किया जाता है। रेडियो में संगीत मन:स्थितियों, घटनाओं, विभिन्न स्थितियों आदि का सूचक होता है।

मौन : रेडियो में मौन का सकारात्मक उपयोग किया जाता है। मौन श्रोता की कल्पना शक्ति को सक्रिय बनाता है। रेडियो नाटक में मौन विशेष परिस्थिति का आभास कराता है – बेटा ! रुक जाओ... मत जाओ... – संवाद में मौन मन:स्थिति को दर्शाता है।

विधा का चुनाव

श्रोता वर्ग को ध्यान में रख, रेडियो विधा का चुनाव किया जाता है। रेडियो की प्रमुख विधाएँ इस प्रकार हैं –

1. वार्ता : वार्ता रेडियो की सर्वाधिक प्रचलित विधा है। इसमें बातचीत की शैली अपनाई जाती है। उदाहरण – ''**आतंकवाद... भारत आतंकवाद से जूझ रहा है। हम अभी तक इसकी दहशत से उबर नहीं पाए हैं। क्या है इसका समाधान ? कब छँटेगी इसकी अँधेरी छाया । आइए, इन्हीं सब पक्षों पर विचार करें।**''

2. नाटक और रूपक : रेडियो नाटक ध्वनि प्रभावकों, शब्दों और संवादों के माध्यम से श्रोता तक पहुँचता है। श्रोता सुनकर अपने मन में दृश्य की कल्पना करता है।

आवाजों, ध्वनि प्रभावों, संगीत, भेंट वार्ता आदि को मिलाकर तथ्यों के साथ किसी विषय को नाटकीय रूप में प्रस्तुत किया जाता है, उसे रूपक कहते हैं। विषय चयन समस्या, सूचना, घटना, व्यक्ति आदि पर आधारित होता है – बाल मजदूरी, सूर्यग्रहण, रेलवे दुर्घटना, महात्मा गांधी।

3. समाचार : समाचार संक्षिप्त, सरल और स्पष्ट ढंग से सुनाया जाता है, समाचार पत्र की तरह इसमें विस्तार नहीं होता है। श्रोता वर्ग साक्षर-निरक्षर, बाल-वृद्ध तथा समाज के सभी लोग होने के कारण भाषा सहज, स्वाभाविक संश्लिष्ट हो-आग्रह रखा जाता है।

4. जनसेवा सूचनाएँ : आम लोगों से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी तुरन्त प्रसारित की जाती है। जैसे रेलगाड़ियों में विलम्ब सूचना, बिजली आपूर्ति में बाधा, संभवित तूफान चेतावनी, रोजगार एवं मौसम समाचार, मंडी के भाव आदि।

5. विज्ञापन : किसी उत्पादन की ओर ध्यान खींचने हेतु विज्ञापन सूचना संक्षिप्त, संगीत एवं ध्वनि प्रभाव से प्रभावी बनाई जाती है।

6. उद्घोषणा : उद्घोषणा और कम्पेयरिंग रेडियो प्रसारण का महत्त्वपूर्ण भाग है। उद्घोषणाएँ पहले से लिखी होती हैं और दिनभर रेडियो से प्रसारित होती रहती हैं। उदाहरणार्थ – ''**..... ये आकाशवाणी अहमदाबाद है।..... पेश है भीमसेन जोशी की आवाज़ में एक भजन।**''

7. कम्पेयरिंग : रेडियो में कम्पेयरिंग अर्थात् किसी कार्यक्रम का संचालन। गीत-संगीत कार्यक्रम, साक्षात्कार, परिचर्चा, आँखों देखा हाल आदि कम्पेयरिंग आधारित कार्यक्रम हैं।

8. गीत-संगीत : गीत-संगीत कार्यक्रम में कार्यक्रम संचालक की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। गीतों के बीच में शेरो-शायरी, सूचनाओं और ज्ञानवर्धक बातों का सुन्दर समन्वय होता है।

9. साक्षात्कार : साक्षात्कार में सूत्रधार की भूमिका प्रमुख होती है। साक्षात्कार लेने से पहले उस व्यक्ति विषयक पूरी जानकारी प्राप्त कर ली जाती है। साक्षात्कार के दौरान पूछे जानेवाले प्रश्न भी पहले से तैयार रख लेने चाहिए।

10. परिचर्चा : परिचर्चा में दो या दो से अधिक व्यक्ति भाग लेते हैं। संचालक का दायित्व इनमें प्रमुख होता है। चर्चा विषय से न भटके, संवाद निर्धारित विषय पर केन्द्रित रहे, इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। इसके अन्तर्गत चैट-शो और

रेडियो-ब्रिज भी आते हैं। 'चैट-शो' परिचर्चा का ही बदला हुआ रूप है।

परिचर्चा में मात्र विषय विशेषज्ञ ही शामिल होते हैं, जब कि चैट-शो में आम नागरिक रेडियो ब्रिज भी एक प्रकार की परिचर्चा ही है। इसमें अलग-अलग रेडियो स्टेशनों पर बैठ विशेषज्ञ किसी विषय पर अपनी राय देते हैं।

11. फोन-इन : 'फोन-इन' में श्रोता घर बैठे अपने गाने फरमाइश कर सकता है। किसी चिकित्सक या प्रमुख व्यक्ति से प्रश्न पूछ सकता है और रेडियो पर उसका उत्तर सुन सकता है।

12. आँखों देखा हाल : आँखों देखा हाल रेडियो का अति लोकप्रिय कार्यक्रम है। गणतंत्र दिवस, क्रिकेट मैच जैसे महत्त्वपूर्ण घटनाओं को स्थल से सीधे श्रोताओं तक पहुँचाया जाता है।

13. रेडियो रिपोर्ट : इसमें समारोह विशेष की रिकार्डिंग सुनाई जाती है, साथ ही संचालक समारोह की कार्यवाही का विवरण देता रहता है।

रेडियो की भाषा

रेडियो की भाषा में (1) वाक्य छोटे हों। (2) सरल शब्दों का प्रयोग हो। (3) आँकड़े अंकों में नहीं शब्दों में हों तथा (4) रेडियो के अनुकूल शब्दों का प्रयोग हो। जिससे श्रोता मस्तिष्क में कल्पना से दृश्य निर्मित कर सके।

रेडियो प्रसारण तुरन्त दोबारा नहीं सुना जा सकता, रेडियो श्रव्य सामग्री है, छपे लेख से भिन्न; अतएव आसानी से समझ में आनेवाली भाषा प्रयुक्त होनी चाहिए।

दूरदर्शन

दूरदर्शन दृश्य एवं श्रव्य माध्यम है, जिसे हम देखते भी हैं और सुनते भी हैं। सारी दुनिया इस जादुई माध्यम से अभिभूत है।

टेलीविजन का उद्‌भव और विकास

टेलीविजन का उद्‌भव 1926 ई. में जॉन लॉगी बेयर्ड के पहली बार टेलीविजन प्रदर्शन के साथ हुआ। 1936 में लंदन में नियमित रूप से टेलीविजन प्रसारण प्रारंभ हुआ। फ्रान्स में 1938 ई., अमरीका में 1940 तथा यूनेस्को की विशेष योजना के अन्तर्गत 15 सितम्बर 1959 को दिल्ली में प्रथम टेलीविजन केन्द्र की स्थापना की गई। जिसका उद्‌घाटन भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने किया। इस टेलीविजन केन्द्र का नाम **'दूरदर्शन'** रखा गया। 15 अगस्त 1956 से नियमित प्रतिदिन घण्टेभर का प्रसारण आरंभ हुआ। 1982 में पहली बार रंगीन टेलीविजन का प्रसारण हुआ।

अब, उपग्रहों की सहायता से 'दूरदर्शन' पूरे भारत में फैल गया है। विदेशी चैनलें भी भारत के टी.वी. सेटों पर उपलब्ध हैं। टी.वी. ओपरेटरों ने इसे और भी आसान बना दिया है। इस प्रकार हमारे टेलीविजन पर सारी दुनिया समा गई है। चौबीसों घण्टे यह सूचना, शिक्षा और मनोरंजन (स्टार प्लस, जी.टी.वी. आदि) प्रत्येक के लिए अलग-अलग चैनलें हो गई हैं। 'दूरदर्शन' पर डी.डी. - 1 तथा डी.डी. - 2 पर मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षापरक, ज्ञानपरक और सूचनापरक कार्यक्रम दिखाये जाते हैं।

टेलीविजन की विशिष्टताएँ

रेडियो में संप्रेषण माध्यम आवाज़ है। टी.वी. में आवाज़ के साथ दृश्य भी होते हैं। टेलीविजन की विशिष्टताएँ :

1. दृश्यश्रव्य माध्यम 2. वर्तमान का माध्यम 3. अंतरंग माध्यम 4. क्लोज-अप का माध्यम

1. दृश्य-श्रव्य माध्यम : जनसंचार के इस प्रभावशाली माध्यम में आवाज़ और दृश्य दर्शक को मंत्र-मुग्ध कर देते हैं। अमरीका में वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर और दिल्ली में संसद पर हुए हमले, कारगिल युद्ध आदि को हमने साक्षात देखा।

प्रौद्योगिकी विकास के कारण विश्व की प्रत्येक घटना को हम टेलीविजन पर देख लेते हैं। टेलीविजन में दृश्यों की भरमार दर्शकों का सदा आकर्षण बनाए रखती है।

2. वर्तमान का माध्यम : रेडियो तथा टेलीविजन पर 'समाचार' और 'आँखों देखा हाल' के अलावा सभी कार्यक्रम पहले से रिकार्ड कर लिए जाते हैं। तब भी ऐसा लगता है उसी समय घटित हो रहा है। टेलीविजन कार्यक्रम के लिए आलेख लिखते समय उसे अधिक से अधिक विश्वसनीय बनाने का प्रयास किया जाता है।

3. **अंतरंग माध्यम :** टेलीविजन आज बैठक से शयन कक्ष में पहुँच चुका है। वह हमारा अंतरंग सखा बन चुका है। उसकी पटकथा लिखते हुए ध्यान रखना होता है कि वह रोचक और मनमोहक हो। लेखन में चमक-दमक और ऐसे मसाले हों कि दर्शक उसमें लीन हो जाए। अतएव सुन्दर दृश्यों, संवादों और नाटकीयता से भरपूर घटनाओं का समावेश अवश्यक है। दर्शकों के मनोविज्ञान, रुचि और पसंद का ध्यान रखना अपेक्षित है।

4. **क्लोज-अप का माध्यम :** टेलीविजन क्लोज-अप का माध्यम है। क्लोज-अप अर्थात् कैमरा किसी चीज को नजदीक से दिखाता है। नजदीक से दिखाया गया दृश्य स्पष्ट होता है और दर्शकों पर अपेक्षित प्रभाव डालने में सक्षम होता है। पात्रों के चेहरों की भाव-भंगिमाएँ नजदीक से देखने को मिलती हैं। इसीलिए टेलीविजन में आंगिक भाषा का विशेष महत्त्व होता है। पात्र के हाव-भाव बिना बोले ही बहुत कुछ कह जाते हैं। टेलीविजन का कैमरा छोटे से छोटे भाव को पकड़ लेता है। चित्र और ध्वनियाँ टेलीविजन सेटों तक विद्युत तरंगों के माध्यम से पहुँचती हैं।

टेलीविजन के विभिन्न कार्यक्रम

टेलीविजन पर प्रसारित होनेवाले कार्यक्रमों को उद्‌देश्यों के अनुसार-सूचना, शिक्षा और मनोरंजन-तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

सूचनापरक कार्यक्रम : टेलीविजन विविध कार्यक्रमों के माध्यम से जन-जन तक सूचना पहुँचाने का काम करता है। समाचार इनमें सबसे प्रमुख है। पहले दूरदर्शन पर तीन बार राष्ट्रीय समाचार प्रसारित होते थे, नेटवर्क आने के बाद समाचारों की बाढ़ आ गई है। आज तक, जी न्यूज, सी.एन.ए., बी.बी.सी. आदि चैनलों पर चौबीसों घण्टे समाचार आते रहते हैं। समाचार संक्षिप्त, सारगर्भित और चुटीले होने चाहिए। प्रत्येक समाचार अलग-अलग पृष्ठ पर लिखा हुआ होना चाहिए। क्योंकि समय की बचत करनी होती है। यद्यपि आजकल नवीनतम तकनीक में समाचार वाचक के सामने रखे कैमरे पर छोटा स्क्रीन बना होता है। उस पर लिखित समाचार धीरे-धीरे आगे बढ़ता है और वाचक उसे पढ़ता जाता है। जिससे लगता है वाचक समाचार पढ़ नहीं रहा है, बोल रहा है।

वृत्तचित्र, परिचर्चा, साक्षात्कार, फोन-इन, आँखों देखा हाल-सूचनापरक कार्यक्रम के अन्तर्गत आते हैं। इन कार्यक्रमों की विशेषता है - सामयिकता। 'नेशनल ज्योग्राफी' और 'डिस्कवरी' टेलीविजन-वृत्तचित्र (डॉक्यूमेन्ट्री) श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

परिचर्चा में किसी सामयिक विषय पर विशेषज्ञ भाग लेते हैं। विषय साहित्यिक, सामाजिक, राजनीतिक कुछ भी हो सकता है। 'चैट शो' भी परिचर्चा का एक परिवर्तित रूप है। जिसमें विषय-विशेषज्ञों के साथ जनता भी शामिल होती है। साक्षात्कार के द्वारा देश-विदेश की महान हस्तियों से सीधे रू-ब-रू हुआ जा सकता है।

शिक्षा संबंधी कार्यक्रम : टेलीविजन में सामान्यत: अधिक महत्त्व मनोरंजन और सूचना को दिया जाता है, उसके बाद आती है 'शिक्षा'। यद्यपि भारत सरकार की सजगता के कारण इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्व विद्यालय में दूरदर्शन का एक नया प्रसारण केन्द्र खोला गया है जिसे 'ज्ञानदर्शन' के नाम से जाना जाता है और चौबीसों घण्टे शिक्षा संबंधी कार्यक्रम दिखाता है। इसी केन्द्र से एन.सी.ई.आर.टी., एस.सी.ई.आर.टी. (स्कूल शिक्षा) और यू.जी.सी. (विश्वविद्यालय शिक्षा) के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं।

शिक्षा संबंधी कार्यक्रमों को लोकप्रिय बनाने हेतु शिक्षा के साथ मनोरंजन भी हो यह आवश्यक है। क्विज कार्यक्रम इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

मनोरंजन ही मनोरंजन : टेलीविजन घर बैठे सस्ता, सुलभ और प्रभावशाली मनोरंजन का माध्यम है। मनोरंजन प्रदान करनेवाले कार्यक्रम दिखाने के लिए अनेक चैनलों में होड़ लगी हुई है। धारावाहिक, गीत-संगीत, चैट-शो आदि इनमें प्रमुख हैं। मनोहर श्याम जोशी का 'हम लोग', 'बुनियाद' तथा रामायण-महाभारत धारावाहिक इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं।

टेलीविजन में 'विज्ञापन' का महत्त्व इतना अधिक है कि प्राय: चैनलों पर 60 प्रतिशत कार्यक्रम और 40 प्रतिशत विज्ञापन होते हैं। विज्ञापनों में भाषा और दृश्यों का सर्जनात्मक उपयोग चकाचौंध पैदा कर बच्चों से बूढ़ों तक को प्रभावित कर रहा है। अर्थात् विज्ञापन-लेखन सर्जनात्मक लेखन का नया क्षेत्र है जिसमें प्रयोग और खोज की अपार संभावनाएँ हैं।

पटकथा लेखन

पटकथा लेखन की आवश्यकता समाचार, वृत्तचित्र, धारावाहिक, गीत-संगीत, विज्ञापन आदि सभी में होती है। प्रत्येक पटकथा टेलीविजन विधा के अनुरूप होनी चाहिए। तथापि पटकथा लेखन की अपनी कुछ शर्तें हैं। जिन्हें समझना जरूरी है :

किस्सागो बनिए।

कैमरे की नजर से देखिए।

तस्वीरों को बोलने दीजिए।

पटकथा में घटनाओं को घटित होता हुआ और पात्रों को बोलता हुआ दिखाया जाता है। लेखक को दृश्य-श्रव्य की कल्पना करनी चाहिए अर्थात् लेखक का दिमाग एक कैमरे की तरह क्रियाशील होना चाहिए। पटकथा लेखक दृश्य-श्रव्य स्मृति के आधार पर कल्पना को किस्सागो बनाकर पटकथा में ढाल ले। पटकथा का एक उदाहरण :

''एक राजा होता है। वह अपने दरबार में बैठा है। दरबार राजकुमारों और मंत्रियों से भरा है। तभी एक बुढ़िया 'दुहाई महाराज की... दुहाई महाराज की' कहते हुए प्रवेश करती है।''

आपने देखा, इसमें अनिश्चित वर्तमानकाल शैली अपनाई गई है। इस शैली द्वारा निर्देशक यह बताता है कि कैमरे के आगे क्या घटित होना है। पटकथा में **'एक राजा था। वह अपने दरबार में बैठा था...'** कथा वाली शैली नहीं चलती। कथावाचक और किस्सागो की शैली अपनानी पड़ती है। भूतकाल की क्रियाओं के स्थान पर वर्तमानकाल का प्रयोग किया जाता है। पटकथा लिखने से पहले दृश्य और संवादों की कल्पना कर लेनी चाहिए और फिर उसे कागज पर उतार लेना चाहिए।

टेलीविजन के सभी दृश्य कैमरा दिखाता है। पटकथा में यह बताना जरूरी होता है कि कैमरा दृश्य को नजदीक से 'क्लोज शॉट' दिखा रहा है, मध्यम दूरी 'मिड शॉट' से दिखा रहा है या दूर से 'लोंग शॉट' दिखा रहा है। यों तो 'क्लोज शॉट' का सहारा अधिक पटकथा की अनिवार्य शर्त है कि तस्वीरों को बोलने दीजिए, खुद कम बोलिए। समाचार, वृत्तचित्र, विज्ञापन सब पर यह बात लागू होती है। शब्दों का अधिक प्रयोग पटकथा को कमजोर बना देता है।

पटकथा लेखन की संरचना

पटकथा लेखन का कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। तथापि दृश्य, विचार और रूपरेखा को ध्यान में रखा जा सकता है।

दृश्य : टेलीविजन पटकथा को कई दृश्यों में विभाजित करना होता है। पटकथा में कथा को दृश्यों में बाँट कर प्रस्तुत किया जाता है। एक समय में एक बार कैमो जो कुछ दिखाता है, उसे 'दृश्य' माना जाता है। दूसरा दृश्य कथा का अगला भाग प्रस्तुत करता है। दृश्य का पूरा विवरण पटकथा में अवश्य लिखा होना चाहिए।

विचार (आइडिया) : पटकथा में विचार का विशेष महत्त्व होता है। विज्ञापन लेखन, लोककथाएँ, परीकथाएँ अथवा आसपास में घटनेवाली घटनाएँ आपके विचार का आधार बन सकती हैं।

रूपरेखा (स्टेप आउटलाइन) : पटकथा की रूपरेखा को मीडिया की भाषा में 'स्टेप आउटलाइन' कहते हैं। इसमें दृश्य का क्रम और संवादों का उल्लेख किया जाता है। रूपरेखा पटकथा का मानचित्र है। रूपरेखा बनाने के बाद ही पटकथा लिखी जाती है।

कार्यक्रम रोचक बने, उसमें दर्शक को बाँधने की क्षमता हो – तथ्यों को ध्यान में रखकर रूपरेखा बनाई जाती है। दृश्य निर्धारण कर संवाद की शैली अपनाते हुए पटकथा लिखी जानी चाहिए।

संचार माध्यम के नवीनतम रूप

ज्ञान के विकास और वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव जीवन को नए-नए संसाधनों की सुविधा प्रदान की। युग के विकास के साथ-साथ संचार माध्यमों में अभूतपूर्व परिवर्तन आया है। अतएव, यहाँ संचार माध्यम के नवीनतम रूपों का परिचय प्रस्तुत है।

कम्प्यूटर

कम्प्यूटर एक एसी इलेक्ट्रॉनिक युक्ति (Device) है जो दिए गए निर्देशन समूह के आधार पर सूचना को संसाधित

(Process) करती है। यह एक तेज गतिशील विद्युत-चलित मशीन है। सन् 1930 में अमरीकी इंजीनियर बेनीवर ने इस मशीन का आविष्कार किया। ब्रिटिश गणितज्ञ चार्ल्स बैबेज ने प्राथमिक स्तर पर कम्प्यूटर डिजाइन किया। कम्प्यूटर की भाषा को बाइनरी अर्थात् 0 एवं 1 कहते हैं। कम्प्यूटर ऑपरेटर की सूचनाओं को चित्र में बदल सकता है, म्यूजिक साउन्ड फ्रीक्वेंसी द्वारा संगीत तैयार कर सकता है।

कम्प्यूटर मानव की कृति है। उसकी अपनी कोई बुद्धिमता नहीं होती है। मानव उसे प्रोग्राम के रूप में शक्ति प्रदान करता है। कम्प्यूटर में डेटा (या जानकारी) लिखित, मुद्रित, श्रव्य, चाक्षुष (Visual) आरेखित या यांत्रिक चेष्टाओं के रूप में उपलब्ध होते हैं।

कम्प्यूटर अर्थात् गणना करनेवाला गणक। परन्तु अब कम्प्यूटर शब्दों, आँकड़ों, संख्याओं और चित्रों की सूचनाओं को 'स्मृतिकोश' में संचित रखने के कारण जटिल से जटिल कार्य करने की क्षमता रखता है। आकार में छोटा और क्षमता में विकसित होने के कारण - पर्सनल कम्प्यूटर - लैपटॉप (गोद में रख काम किया जा सके), पामटॉप (हथेली में रख काम किया जा सके) आदि रूप भी सामने आते जा रहे हैं।

सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर

विशेष प्रकार के कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विकसित प्रोग्राम को सॉफ्टवेयर कहते हैं। जिनकी मदद से हम कम्प्यूटर को कमांड देकर इच्छानुसार काम ले पाते हैं। ये दो तरह के होते हैं :

1. सिस्टम सोफ्टवेयर : डॉस, विंडोज, यूनिक्स आदि प्रणाली से इसका संबंध है। इनमें फोर्टान, कोबोल, बेसिक, पास्कल आदि में प्रोग्राम तैयार किए जाते हैं।

2. एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर : प्रयोग की प्रकृति के आधार पर पुस्तक प्रकाशन, शब्द संसाधन, आँकड़ा संसाधन आदि कार्यों का अनुप्रयोग एप्लीकेशन सॉफ्टवेयर में होता है।

हार्डवेयर : कम्प्यूटर और कम्प्यूटर से जुड़े सभी यन्त्रों तथा उपकरणों को हार्डवेयर कहा जाता है। हार्डवेयर के अन्तर्गत-मानीटर, कुंजीपटल, केन्द्रीय संसाधक एकक, माउस और मुद्रक शामिल हैं।

फ्लॉपी : इसे डिजिटल फाइल भी कह सकते हैं। एक कंम्प्यूटर से आँकड़े इसमें स्टोर कर हम दूसरे कम्प्यूटर में ले जाकर देख सकते हैं। फ्लॉपी डिस्क आँकडों और सूचनाओं को एकत्र करने का काम करती है।

सीडी-रोम : यह 12 सेमी की छोटी डिस्क होती है; सूचना एकत्र करने का साधन। इसका पूरा नाम है - काम्पैक्ट डिस्क-रोम ओनली मेमोरी।

इन्टरनेट : यह सूचना आदान-प्रदान करने का क्रान्तिकारी साधन है। इस पर सरकारी नियंत्रण और भौगोलिक सीमाओं का दबाव नहीं है। यह दुनियाभर में फैले कम्प्यूटरों को जोड़कर बनाया गया नेटवर्क है।

इन्ट्रानेट : इन्टरनेट कम्प्यूटरों का विश्वव्यापी जाल है जबकि इन्ट्रानेट किसी खास संस्था की जरूरतों को पूरा करने का साधन है।

डब्लू डब्लू डब्लू : अर्थात् वर्ल्ड वाइड वेब-दुनियाभर में फैला जाल। इसमें इन्टरनेट पर अपनी पसंद की साइट पर हम चीजें पढ़ सकते हैं, सजीव चित्र देख सकते हैं और आवाज़ सुन सकते हैं।

ई-मेल : पत्र त्वरित भेजने का इलैक्ट्रॉनिक तरीका। विश्व में कहीं से और किसी भी कम्प्यूटर से इन्टरनेट तक पहुँचकर आप ई-मेल भेज और प्राप्त कर सकते हैं। इसमें आप चित्र और आवाज़ वाली फाइलें भी भेज सकते हैं।

एचटीएमएल : एचटीएमएल अर्थात् हायपर टेक्स्ट मार्कअप लैंगुएज।

एचटीटीपी : एचटीटीपी अर्थात् हायपर टेक्स्ट ट्रान्सफर प्रोटोकोल। डॉक्यूमेन्ट मंगाने या भेजने हेतु इसका उपयोग किया जाता है।

ब्राउजर : वर्ल्ड वाइड वेब पहुँचानेवाला सोफ्टवेयर।

सर्च इन्जन : इन्टरनेट सूचना का सागर है। इच्छित जानकारी ढूँढ़ने में सर्च इंजन नामक सुविधा वरदान रूप है। आपको जिस विषय में जानकारी चाहिए, उससे संबंधित शब्द लिखने पर पलक झपकते ही सर्च इंजन वर्ल्ड वाइड वेब से सारी जानकारी खोज लाता है।

ई-कॉमर्स : अर्थात् इलैक्ट्रॉनिक कामर्स। इन्टरनेट की मदद से कम्प्यूटर द्वारा व्यापार-व्यवसाय करना संभव हो गया है। इसमें रुपयों का भुगतान एक समस्या थी उसका क्रेडिट कार्ड और डिजिटल हस्ताक्षर नामक तकनीक से रास्ता निकल गया है। कंपनी का कंपनी से तथा कंपनी का ग्राहक से ई-कॉमर्स द्वारा व्यवसाय कंम्प्यूटर के सामने बैठे-बैठे सहज रूप से संचालित होने लगा है।

ब्रॉडबैंड : अभी चित्रों और आवाज़वाली फाइलों को इन्टरनेट से कम्प्यूटर पर लेने में बहुत समय लग जाता है, अब ब्राडबैंड इस काम को आसान बना देगा।

बैंडविड्थ : नेटवर्क कनेक्शन की क्षमता को बैंडविड्थ कहते हैं। नेटवर्क में डाटा का प्रवाह कितनी गति से हो रहा है, इसी से पता चलता है।

वायरस : कम्प्यूटर वायरस मानव निर्मित डिजिटल परजीवी है, जो फाइल संक्रामक के नाम से जाना जाता है। वायरस नेटवर्क या कम्प्यूटर पर घुसपैठ कर ऑपरेटिंग सिस्टम को तबाह करनेवाला प्रोग्राम होता है। ये वायरस ई-मेल या टेलीफोन लाइन या फ्लॉपी या डिस्क के माध्यम से घुसपैठ कर करोड़ों की हानि पहुँचा देते हैं। कंम्प्यूटर वायरस पर नियन्त्रण पाने के लिए वायरस निरोधी स्मार्ट डॉग, रेड अलर्ट, क्विक हील, वी. सेफ एन्टीवयरस जैसे अनेक प्रोग्रामों का विकास किया जा चुका है।

वैप : वायरलेस एक्सेस प्रोटोकॉल-तकनीक द्वारा हम मोबाइल उपकरणों पर इन्टरनेट देख सकते हैं। इन मोबाइल उपकरणों में सेलफोन, पामटॉप, डिजिटल डायरी आदि सम्मिलित हैं।

आईएसपी : इसका मतलब होता है इन्टरनेट सर्विस प्रोवाइडर। जो सेवा अब तक इन्टरनेट पर टेलीफोन लाइन पर उपलब्ध थी वही ऑप्टिक फाइबर और केबल के प्राप्त हो रही है।

एएसपी : इसका मतलब होता है एप्लिकेशन सर्विस प्रोवाइडर; ई-कॉमर्स की दुनिया में इस सेवा की जरूरत रोज बढ़ती जा रही है।

3 जी और 4 जी फोन : मोबाइल फोन पर विकसित की गई तीसरी और चौथी पेढ़ी की तकनीक जिसके द्वारा मल्टीमीडिया संदेश भेजना आसान हो गया है।

फैक्स : फैक्स को फैक्सीमाइल भी कहते हैं। इसके द्वारा रेडियो तरंगों या फिर टेलीफोन लाइनों से लिखित (एवं फोटोवाली) जानकारी को एक जगह से दूसरी जगह भेज सकते हैं और उसके मूल स्वरूप में प्राप्त कर सकते हैं। साधारण फैक्स मशीन से जब सूचना भेजी जाती है तो वह उसको लिखित और ग्राफिक जानकारी को स्कैन कर लेती है और टेलीफोन नेटवर्क से दूसरी फैक्स मशीन तक भेज देती है, इन्टरनेट और सूचना क्रान्ति के आने के बाद इन्टरनेट से भी फैक्स भेजना संभव हो गया है। अब तो मोबाइल फोन पर भी फैक्स प्राप्त करने की सुविधा उपलब्ध है।

मोडेम : डिजिटल डाटा भेजने के लिए मोडेम का उपयोग किया जाता है। जब हम किसी कम्प्यूटर को टेलीफोन लाइन द्वारा इन्टरनेट से जोड़ते हैं तो वहाँ भी यह काम मोडेम ही करता है। मोडेम डिजिटल डेटा को एनालॉग सिगनल में बदल कर तरंगों के रूप में भेजता है।

सर्वर : नेटवर्क का एक ऐसा कम्प्यूटर होता है जो कि सारे नेटवर्क के लिए किसी एक विशेष काम का दायित्व संभालता है। **उदाहरण :** किसी नेटवर्क में प्रिन्ट सर्वर है तो वह नेटवर्क के सभी कम्प्यूटरों के प्रिन्ट निकालने संबंधी काम की देखरेख करेगा।

इन्टरनेट टेलीफोनी : भविष्य में इन्टरनेट का उपयोग टेलीफोन की तरह किया जा सकेगा। इस दृष्टि से अगली क्रान्ति इन्टरनेट टेलीफोनी की होगी। कुछ पाश्चात्य देशों में इसका प्रचलन लोकप्रिय हो गया है। इसमें वॉयस ऑन इन्टरनेट तकनीक का उपयोग किया जाता है। इससे टेलीफोन कॉल पर आनेवाला भारी खर्च भी बच जायेगा।

एसएमएस और ईएमएस : इन्टरनेट पर ई-मेल संदेश भेजे जाते हैं उसी तरह मोबाइल फोन पर छोटे-छोटे लिखित संदेश किसी दूसरे मोबाइल फोन पर भेजे जा सकते हैं। इन संदेशों को एसएमएस अर्थात् शॉर्ट मैसेज सर्विस कहते हैं। लेकिन इनके आकार की एक सीमा निर्धारित होती है। अतएव लम्बे संदेश (जिनमें चित्र और संगीत वाली फाइल शामिल होगी) एक्सटेंडेड मैसेज सर्विस अर्थात् 'ईएमएस' द्वारा भेजे जा सकते हैं।

जनसंचार माध्यम : शब्दावली

प्रेस में प्रयुक्त होनेवाली शब्दसूची

ए.बी.सी. (A.B.C.) ऑडिट ब्यूरो ऑफ सर्कुलेशन। समाचार पत्रों की प्रसार संख्या जाँच करनेवाली संस्था।

ऐड (ad) : एडवरटाइजमेन्ट (विज्ञापन) का संक्षिप्त रूप।

एडवान्स (अग्रिम) : समय से पहले छपने के लिए सुलभ सामग्री के लिए प्रयुक्त शब्द। उदा., प्रमुख व्यक्तियों के तैयार भाषण आदि प्रेस में पहले से भेज दिए जाते हैं।

ऑल इन हैन्ड (All in hand) :समाचार पत्र में सामग्री तैयार होकर छपने जब चली जाती है तब ऑल इन हैन्ड (प्रेषित) प्रयुक्त होता है।

ए.पी. : 'एसोसिएटेड प्रेस' का संक्षिप्त रूप.

एसाइन मेन्ट : वे निर्देश जिन्हें संपादक, ब्यूरो चीफ या मुख्य संवाददाता खबर लाने हेतु संवाददाताओं को देते हैं।

बी., एफ. : बोल्ड फेस। मोटे या अधिक काले प्रभाववाला टाइप।

बैलून (Ballon) : व्यंगचित्रों के संवाद में पात्रों के मुँह के पास बैलून जैसे गोलाकार घेरे में लिखे जाते हैं, उसे बैलून कहते हैं।

बीट (Beat) : संवाददाताओं के समाचार-संकलन के क्षेत्र को बीट कहते हैं। जैसे अस्पताल, नगर निगम, मंत्रालय आदि।

बॉक्स : छोटे रोचक समाचार को चौखट में छापने को बॉक्स कहते हैं।

क्रॉप (Crop) : चित्र को काट-छाँट कर संपादित करने का काम क्रॉप कहलाता है।

ब्यूरो : विशेष संवाददाताओं के विभाग को ब्यूरो कहते हैं।

कैप्शन (Caption) : चित्र के साथ दिए गए चित्र-परिचय को कैप्शन कहते हैं।

कालम (column) : समाचार पत्र के पृष्ठ छः या आठ भाग में लंबवत बँटे होते हैं। इनमें से प्रत्येक भाग को कालम कहते हैं।

कैरी ऑवर : समाचार के बचे हुए भाग को दूसरे पन्ने पर ले जाना।

कालमिस्ट : समाचार पत्र का स्तंभ लेखक।

डेड लाइन : प्रेस में खबर भेजने की 'अन्तिम अवधि'।

रेडियो और टेलीविजन में प्रयुक्त होनेवाली : शब्द-सूची

फ़ेड आउट : रेडियो में ध्वनि और टेलीविजन में दृश्य के धीरे-धीरे अदृश्य होने की प्रक्रिया को फ़ेड आउट कहते हैं।

फ़ेड इन : रेडियो पर ध्वनि और टेलीविजन में दृश्य के धीरे-धीरे उभरने की प्रक्रिया को फ़ेड इन कहते हैं।

क्रॉस फ़ेड : रेडियो में एक ध्वनि का पूरा होना और दूसरी का सुनाई देना, इस प्रक्रिया के क्रॉस फ़ेड कहते हैं।

डिजाल्व : टेलीविजन में एक छबि के अदृश्य होने और दूसरी के सामने आने की प्रक्रिया को डिजाल्व कहते हैं।

फ्लैश-बैक : बीते हुए जीवन को याद करने की प्रक्रिया को फ्लैश बैक कहते हैं।

•

हिन्दी साहित्य का इतिहास

'इतिहास' शब्द इति + ह + आस के योग से बना है। 'इति' का अर्थ है – ऐसा, 'ह' से तात्पर्य है – निश्चित रूप से और 'आस' का मतलब है – था। इस तरह इतिहास शब्द का अर्थ होगा – 'ऐसा निश्चित रूप से था।' सामान्यत: इतिहास अतीत की वास्तविक घटनाओं का आलेख होता है जबकि साहित्य का इतिहास अतीत की साहित्यिक घटनाओं–गतिविधियों का आलेख होता है। सच तो यह है कि संसार की प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति, समाज, राजनीति, कला, शास्त्र, दर्शन, विज्ञान, भाषा आदि हर चीज के विकास का अपना–अपना इतिहास होता है। यहाँ तक कि इतिहासों का भी इतिहास होता है।

हिन्दी भाषा और साहित्य का भी अपना इतिहास है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की बात करते समय हमारे मन में यह स्पष्ट हो जाना जरूरी है कि हिन्दी एक विशाल एवं वैविध्यपूर्ण हिन्दी भाषी क्षेत्र की भाषा है। जिसकी पाँच उपभाषाएँ और अनेक बोलियाँ हैं। पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, बिहारी और पहाड़ी जैसी पाँच उपभाषाओं के अंतर्गत विविध बोलियाँ आई हुई हैं। हिन्दी भाषीक्षेत्र के अंतर्गत हिमाचल, उत्तराखंड, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार और झारखंड का समावेश होता है। इन प्रदेशों में ब्रज, अवधी, मैथली, भोजपुरी मालवी, मारवाड़ी, छत्तीसगढ़ी एवं पहाड़ी आदि कई बोलियाँ आई हुई हैं। यद्यपि मानक हिन्दी के रूप में खड़ी बोली को ही मान्यता प्राप्त है, लेकिन उपर्युक्त सभी बोलियाँ भी साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध होने के कारण अपना महत्त्वपूर्ण मूल्य रखती हैं। अत: जब हम हिन्दी साहित्य के इतिहास पर विचार करते हैं तब हिन्दी बोलियों में उपलब्ध साहित्य का भी समावेश करते हैं। अत: हिन्दी साहित्य के इतिहास से तात्पर्य होगा – खड़ीबोली एवं हिन्दी की विविध बोलियों में लिखित साहित्य का इतिहास।

किसी भी भाषा के साहित्य के अध्ययन के दो मुख्य स्रोत होते हैं, अंत:साक्ष्य और बाह्य साक्ष्य। अंत:साक्ष्य के अंतर्गत स्वयं रचनाकार द्वारा उसकी रचनाओं, संपादनों में की गई टिप्पणी, आत्मनिवेदन आदि के आधार पर इतिहास लिखा जाता है। इतिहासकार इन रचनाओं में प्रतिबिंबित परिस्थितियों–प्रवृत्तियों का अध्ययन–अनुशीलन कर इतिहास–लेखन करता है। बाह्य साक्ष्य के अंतर्गत रचनाकारों की मूल रचना के अलावा अन्य व्यक्तियों द्वारा दी गई जानकारी या अन्य किसी माध्यम से प्राप्त जानकारी के आधार पर इतिहास की रचना करता है। बाह्य साक्ष्य से उपलब्ध सामग्री को लेकर उसकी प्रामाणिकता प्रश्नों के घेरे में अक्सर रहती है। इतिहास के लेखन और पुनर्लेखन की प्रवृत्ति बराबर चलती रहती है। वर्तमान समय में हिन्दी साहित्य के अध्ययन के लिए जो प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं : (1) गार्सां द तासी द्वारा फ्रेंच भाषा में लिखित 'इस्तवार द ल लितरेत्युर एं दुई ए हिन्दुस्तानी' (हिंदुई तथा हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास), जॉर्ज ग्रियर्सन–रचित 'मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान', शिवसिंह सेंगर का 'शिवसिंह सरोज', मिश्र बंधुओं का 'मिश्रबंधु विनोद' आदि हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक इतिहास हैं। इस परंपरा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा लिखा गया 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सन् 1929) सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास माना जाता है। आगे चलकर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' एवं 'हिन्दी साहित्य का उद्‌भव एवं विकास' नामक इतिहास ग्रंथ लिखकर अपनी कुछ नई स्थापनाओं को समाने रखा।

उपलब्ध इतिहास ग्रंथों के आधार पर यह बात साफ हो जाती है कि हिन्दी साहित्य का प्रारंभ ई. सन् 1000 के आसपास माना जा सकता है। इससे कुछ पीछे जाकर देखा जाए तो आठवीं शताब्दी (ई.स. 800) के आसपास सिद्धों और नाथों की परंपरा प्राप्त होती है जिसमें अपभ्रंश–मिश्रित पुरानी हिन्दी के दर्शन होते हैं। इसी क्रम में आगे जैन साहित्य की रचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। ई.स. 1000 के आसपास प्रारंभ होने वाला हिन्दी साहित्य उस हिन्दी भाषा का साहित्य है जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं पुरानी हिन्दी से होती हुई आदिकाल की हिन्दी तक आती है।

हिन्दी साहित्य का काल–विभाजन : आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहासग्रंथ में प्रत्येक काल की प्रमुख प्रवृत्ति को केन्द्र में रखकर हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार काल–खंडों में विभाजित किया है :

(1) वीरगाथा काल (आदिकाल) संवत् 1050 से 1375 तक

(2) भक्ति काल (पूर्व मध्यकाल) संवत् 1375 से 1700 तक

(3) रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल) संवत् 1700 से 1900 तक

(2) आधुनिक काल (गद्यकाल) संवत् 1900 से अब तक

यद्यपि हिन्दी साहित्य का इतिहास का काल-विभाजन कई लोगों ने किया है किंतु आचार्य शुक्ल द्वारा किया गया विभाजन सामान्यत: सर्वस्वीकृत है।

आदिकाल (1000-1400 ई.)

आदिकाल विविध और परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों का काल है। राजनीतिक दृष्टि से उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद किसी ने केन्द्रीय सत्ता स्थापित नहीं की। छोटे-छोटे राजवंश जैसे चंदेल, चालुक्य, चौहान, तोमर, राठौर आदि आपस में लड़कर शक्तिहीन हो रहे थे। बाहरी आक्रमण भी तेज हो गए थे। परन्तु राजाओं के आपसी युद्ध या बाहरी हमलों का कोई परिवर्तनकारी प्रभाव सामान्य जनता पर नहीं पड़ता था।

कवि अधिकतर राज्याश्रित थे। वे आश्रयदाताओं के पराक्रम, रूप और दान की प्रशंसा करते थे। इस काल में राजाओं पर लिखे गए काव्यों का सामान्य विषय भूमि और नारी का हरण है।

सामान्य जनता के दैनिक जीवन पर राज्य की अपेक्षा धार्मिक मतों का अधिक प्रभाव था। धार्मिक दृष्टि से इस काल में अनेक साधनाएँ प्रचलित थीं। सिद्ध, जैन, नाथ आदि मतों का व्यापक प्रचार किया गया था। इनका साहित्य भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। इस्लाम का प्रवेश हो चुका था, किंतु उसका प्रभाव साहित्य पर आदिकाल के अंतिम कवि अमीर खुसरो में ही दिखलाई पड़ता है।

इस काल में आवागमन के साधन आज जैसे विकसित नहीं थे। इसका परिणाम यह दिखलाई पड़ता है कि विभिन्न स्थानों पर रची हुई कृतियों में भाषागत भिन्नता अधिक है। इसलिए आदिकाल का हिंदी साहित्य अनेक बोलियों का साहित्य प्रतीत होता है। उपलब्ध साहित्य अपभ्रंश हिंदी का साहित्य है, शुद्ध अपभ्रंश या शुद्ध हिंदी का नहीं।

सिद्ध कवि

बौद्ध धर्म कालांतर में मंत्र-तंत्र की साधना में बदल गया था। वज्रयान इसी प्रकार की साधना थी। सिद्धों का संबंध इसी वज्रयान से था। इनकी संख्या 84 बताई जाती है। प्रथम सिद्ध सरहपा को सहजयान का प्रवर्तक कहा जाता है। उन्होंने सहज जीवन पर अधिक बल दिया है। सिद्धों ने वर्णाश्रम व्यवस्था पर तीव्र प्रहार किया है। इन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया है, उसके सांकेतिक अर्थ निकलते हैं। जो **संधा** भाषा के नाम से जानी जाती है। कबीर आदि निर्गुण संतों की इसी भाषा-शैली को 'उलटबाँसी' कहा जाता है।

नाथ कवि

बौद्धों की वज्रयान शाखा से ही नाथ पंथ का संबंध माना जाता है। यह सिद्धों के बाद का समय था। चौरासी सिद्धों की जो सूची मिलती है, उसमें कई नाम नाथों के भी हैं। नाथपंथ में गोरखनाथ शिव के रूप में माने जाते हैं, अत: इनका शैव होना स्पष्ट है। गोरखनाथ ने पतंजलि के योग को लेकर हठयोग का प्रवर्तन किया और ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक-मानसिक शुचिता तथा मद्य-मांस के त्याग का आग्रह किया। इनका सिद्धांत था - 'जोई-जोई पिंडे सोई ब्रह्माडे' अर्थात् जो शरीर में है वही ब्रह्मांड में है। इला-पिंगला, नाद-बिंदु की साधना, षटचक्र भेदन, शून्य चक्र में कुंडलिनी का प्रवेश आदि नाथों की अंतरसाधना के मुख्य अंग हैं। गोरखनाथ के गुरु मत्सेन्द्रनाथ थे, और उनके गुरु जलंधर थे।

जैन मतावलंबी कवि

जैन मत के प्रभाव में अधिकांश काव्य गुजरात, राजस्थान और दक्षिण में रचा गया है। यह प्राय: प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है। जैन मतावलंबी रचनाएँ दो प्रकार की हैं - १. जिनमें नाथ सिद्धों की तरह अंतरसाधना, उपदेश, नीति सदाचार पर बल और

कर्मकांड का खंडन है। ये मुक्तक हैं। प्राय: दोहों में रचित हैं। २. जिनमें पौराणिक जैन साधकों की प्रेरक जीवन-कथा या लोक प्रचलित कथाओं को आधार बनाकर जैन मत का प्रचार किया गया है। जैन पौराणिक काव्य एवं चरित काव्य इसी श्रेणी के काव्य हैं।

इस काल में कुछ वैष्णव साहित्य भी लिखा गया। 14वीं शताब्दी में कवि लक्ष्मीधर द्वारा संकलित 'प्राकृत पैंगलम्' के कई छंदों में विष्णु के विभिन्न अवतारों से संबंधित पंक्तियाँ मिलती हैं। इसी प्रकार हेमचंद्र के 'प्राकृत व्याकरण' में संकलित अपभ्रंश दोहों में भी राधा, कृष्ण, दशमुख आदि की चर्चा आती है। किन्तु विष्णु के अवतारों से संबंधित आदिकालीन साहित्य अब उपलब्ध नहीं है।

वीरगाथा काव्य

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल को 'वीरगाथा काल' कहा है। उन्होंने इस काल की प्रधान साहित्यिक प्रवृत्ति की पहचान जिन 12 ग्रंथों के आधार पर की है, वे इस प्रकार हैं - विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिकला, कीर्ति पताका, खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचंद्र प्रकाश, जय मयंक - जस-चंद्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ और विद्यापति पदावली।

इन सभी ग्रंथों में कुछ प्रामाणिक हैं और कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। इन सभी ग्रंथों में **पृथ्वीराज रासो** आदिकाल का सर्वाधिक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस काव्य का रचनाकाल और इसका मूलस्वरूप विवादास्पद है। इसके रचयिता चंदबरदाई पृथ्वीराज चौहान के अंतरंग बताए जाते हैं। रासो में पृथ्वीराज के विभिन्न युद्धों और विवाहों का वर्णन है। वीर एवं शृंगार इसके प्रमुख रस हैं लेकिन अंगीरस वीर ही माना जाएगा। चंदबरदाई ने बड़ी कुशलता से नायिका का नखशिख वर्णन, सेना के प्रयाण, युद्ध, षड्ऋतु-वर्णन आदि को चित्रित किया है। विविध छंदों का प्रयोग भी उन्होंने बड़ी कुशलता से किया है, किंतु छप्पय उनका प्रिय छंद है।

अन्य ग्रंथों में विद्यापति की कीर्तिलता, कीर्ति पताका, पदावली और नरपति नाल्ह की बीसलदेव रासो प्रामाणिक रूप से उपलब्ध हैं। जगनिक कृत परमाल रासो आल्हा के रूप में पहचाना जाता है। नल्लसिंह रचित विजयपाल रासो में युद्ध वर्णन है। हमीर रासो, जयचंद प्रकाश और जयमयंक-जस-चंद्रिका उपलब्ध नहीं है। खुमान रासो के रचयिता दलपति विजय हैं।

आदिकाल के अन्य कवि

विद्यापति (14वीं शताब्दी) इस काल के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इनकी तीन रचनाएँ प्रसिद्ध हैं : कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली। **कीर्तिलता** छोटा-सा प्रबंध काव्य है। इसमें कीर्तिसिंह द्वारा अपने पिता का बदला लेने का वर्णन है। यह काव्य 'अवहट्ट' देशी भाषा अर्थात् मैथिली युक्त विकसित अपभ्रंश है। **पदावली** में राधा-कृष्ण अपना अलौकिकत्व छोड़कर लौकिक व्यक्तियों के समान प्रेमभावना से विह्वल होते हैं। लोक में जिस प्रकार किशोरी लोकलाज के कारण तीव्र अंतर्द्वन्द्व झेलती है, उसी प्रकार राधा को चित्रित किया गया है।

अमीर खुसरो (14वीं सदी) इस युग के प्रसिद्ध कवि हैं। वे संगीतज्ञ, इतिहासकार, कोशकार, बहुभाषाविद् और सूफी औलिया थे। उनकी हिन्दी रचनाएँ अत्यंत लोकप्रिय रही हैं। उनकी पहेलियाँ, मुकरियाँ, दो सखुने अभी तक लोगों की जबान पर हैं। उनके नाम से निम्नलिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं कि यह दोहा खुसरो ने हजरत निजामुद्दीन औलिया के देहांत पर कहा था -

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।
चल घर खुसरो आपने, रैन भई चहुँ देस॥

उनका महत्त्व इस बात में है कि अपभ्रंश-मिश्रित भाषा और डिंगल के स्थान पर उन्होंने सर्वप्रथम खड़ी बोली और ब्रजभाषा का सफलता पूर्वक प्रयोग किया।

आदिकाल की प्रवृत्तियाँ

- आदिकाल अपभ्रंश और हिन्दी का संधिकाल है।
- इस काल में नाथ-सिद्धों और जैन कवियों का साहित्य मिलता है, जिसमें वैदिक मत और कर्मकांड की आलोचना है।
- आदिकालीन साहित्य में सामंतों एवं आश्रयदाताओं का गुणगान किया गया है।
- इस काल के साहित्य में युद्धों का सजीव चित्रण किया गया है।
- वीरगाथात्मकता इस काल की प्रधान प्रवृत्ति है।
- इस काल के साहित्य में वीर रस एवं शृंगार रस की प्रधानता है।
- इस काल के अंतिम कवि विद्यापति ने अपभ्रंश और आधुनिक भाषा (मैथिली) दोनों में रचना की है।
- अमीर खुसरो ने दो सखुने, मुकरियाँ, पहेलियाँ जैसे लोक प्रचलित काव्यरूपों का प्रयोग किया है। उनमें फारसी, खड़ी बोली और ब्रजभाषा तीनों का प्रयोग है।
- आदिकाल की अधिकांश रचनाएँ अप्रामाणिक या अर्द्धप्रामाणिक हैं।

भक्ति काल (1400-1700 ई.)

भक्ति काल और भक्ति कालीन साहित्य के मूल में भक्ति आन्दोलन है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्ति आन्दोलन भारतीय चिंता-धारा का स्वाभाविक विकास है। यह आंदोलन और साहित्य लोकोन्मुखता एवं मानवीय करुणा के महान आदर्श से युक्त है।

भक्ति आन्दोलन के प्रारम्भ की परिस्थितियाँ भी विशिष्ट हैं। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने इसे इस्लामी आक्रमणों से पराजित हिन्दू जनता की असहाय एवं निराश मन:स्थिति से जोड़ा है। उनका मानना है कि दक्षिण से आई हुई भक्ति की लहर को उत्तर भारत की जनता ने बड़े व्यापक रूप में अपना लिया।

भक्ति आन्दोलन का उदय और विकास किसी सुसंगत विचारधारा या दर्शन के बिना नहीं हो सकता था। इस दृष्टि से रामानुज और रामानंद की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। रामानुज के अनुसार जगत मिथ्या नहीं वास्तविक है। इस जगत को वास्तविक मानकर उसे महत्त्व देने में ही भक्ति की लोकोन्मुखता एवं करुणा है। जगत मिथ्या नहीं वास्तविक है, यह लौकिकता की दार्शनिक स्वीकृति है।

रामानुज की ही परंपरा में रामानंद हुए, जिनके बारे में कहा जाता है कि वे भक्ति को दक्षिण भारत से उत्तर भारत ले आए। भक्ति एक प्रवृति के रूप में रामानुजाचार्य के पहले भी थी, किन्तु वह साधना पद्धति मात्र थी, आन्दोलन नहीं। जो अनुकूल स्थितियों में धार्मिक आन्दोलन बन गई।

भक्ति की धाराएँ : विभिन्न संप्रदाय

भक्ति की दो धाराएँ प्रवाहित हुईं - निर्गुण धारा और सगुण धारा। निर्गुण और सगुण धारा में अंतर इस बात का नहीं है कि निर्गुणियों के राम गुणहीन हैं और सगुण मतवादियों के राम या कृष्ण गुण सहित। वस्तुत: निर्गुण का अर्थ संतों के यहाँ गुणरहित नहीं है। निर्गुण और सगुण मतवाद का अंतर अवतार एवं लीला को लेकर है। निर्गुण मत के इष्ट भी कृपालु, सहृदय, दयावान, करुणाकर हैं, वे भी मानवीय भावनाओं से युक्त हैं, किन्तु वे न अवतार ग्रहण करते हैं, न लीला करते हैं। वे निराकार हैं। सगुण मत के इष्ट अवतार लेते हैं, दुष्टों का दमन करते हैं। अत: सगुण मतवाद में विष्णु के अवतारों में से अनेक की उपासना होती है, यद्यपि सर्वाधिक लोकप्रिय और लोकपूजित अवतार राम एवं कृष्ण ही हैं।

निर्गुण एवं सगुण दोनों प्रकार की भक्ति का मुख्य लक्षण है - भगवद् विषयक रति अर्थात् भगवान से अनन्य प्रेम। नाथ-सिद्धों के आसन-प्राणायाम, सहज-समाधि, शरीर, प्राण, मन, वाणी की अचंचलता का योग - सब इसी प्रेम में विलीन हो गए हैं।

भक्ति के अनेक संप्रदाय हैं। उनमें से चार प्रमुख संप्रदाय – श्री, ब्राह्म, रुद्र और सनकादि या निंबार्क हैं। **श्री संप्रदाय** के आचार्य रामानुजाचार्य हैं। इन्हीं की परम्परा में रामानंद हुए। इन्होंने अवर्ण-सवर्ण, स्त्री-पुरुष, राजा-रंक सभी को शिष्य बनाया। रैदास, कबीर, धन्ना, सेना, पीपा, भवानंद, सुखानंद आदि इन्हीं के शिष्य हैं। इनके मत के प्रचार की भाषा हिन्दी थी। **ब्राह्म संप्रदाय** के प्रवर्तक मध्वाचार्य थे। इस संप्रदाय में चैतन्य महाप्रभु दीक्षित हुए। इस संप्रदाय का सीधा संबंध हिन्दी से नहीं है। **रुद्र संप्रदाय** के प्रवर्तक विष्णु स्वामी थे। यह महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुष्टि संप्रदाय के रूप में जाना जाता है। जिस प्रकार रामानंद ने राम की उपासना पर बल दिया था, उसी प्रकार वल्लभाचार्य ने कृष्ण की उपासना पर। सूरदास और अष्टछाप के कवियों पर इसी संप्रदाय का प्रभाव है। **सनकादि संप्रदाय** के प्रवर्तक निंबार्काचार्य थे। हिन्दी भक्ति साहित्य को राधावल्लभ संप्रदाय से प्रभावित बताया जाता है। इसमें राधा की प्रधानता है।

भक्ति आंदोलन इतना व्यापक एवं मानवीय था कि इसमें हिन्दुओं के साथ मुसलमान भी आ जुड़े। जो सूफी संत कहलाए। सूफी यद्यपि इस्लाम मतानुयाई हैं, किन्तु अपने दर्शन एवं साधना पद्धति के कारण भक्ति आंदोलन में महत्त्वपूर्ण हैं। इस्लाम एकेश्वरवादी है। किन्तु सूफी संतों ने 'अनहलक' अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ' की घोषणा की।

आधुनिक हिन्दी क्षेत्र के बाहर पड़नेवाले दो संत कवियों – महाराष्ट्र के नामदेव और पंजाब के गुरुनानक ने हिन्दी में रचना की। नामदेव की प्रारंभिक रचनाएँ सगुणोपासना और बाद की निर्गुणोपासना से संबंधित हैं। गुरु नानक का संबंध किसी संप्रदाय से जोड़ना कठिन है। ये सिख संप्रदाय के प्रवर्तक एवं प्रथम गुरु हैं।

अब हम भक्ति की निर्गुण और सगुण दोनों काव्य-धाराओं का तथा उनकी उपधाराओं के कवियों और उनकी रचनाओं पर विचार करेंगे।

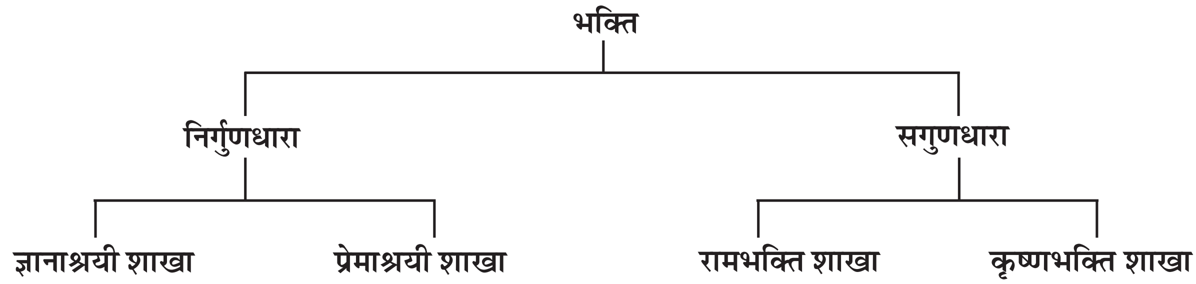

भक्ति की निर्गुण धारा : ज्ञानाश्रयी शाखा

भक्ति साहित्य की दो धाराओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इनमें से निर्गुण की दो उपधाराएँ संत और सूफी काव्य धारा है। संत काव्य धारा को ज्ञानाश्रयी एवं सूफी काव्य धारा को प्रेमाश्रयी कहा जाता है। कबीर ज्ञानाश्रयी शाखा अर्थात् संतकाव्य धारा के प्रमुख कवि हैं और मालिक मुहम्मद जायसी प्रेमाश्रयी अर्थात् सूफी काव्य धारा के कवि हैं। कबीर आदि की धारा को ज्ञानाश्रयी कहने का कारण यह प्रतीत होता है कि इन संतों ने 'ज्ञान' पर सूफियों की अपेक्षा अधिक बल दिया है। कबीर आदि के यहाँ भगवत्प्रेम पर कम बल नहीं है किन्तु सूफी कवि प्रेम का जितना विस्तृत चित्रण करते हैं, कबीर आदि नहीं करते।

कबीर (1398-1518 ई.)

भक्तिकाल की इस निर्गुण संत-काव्य परम्परा में कबीर का स्थान प्रमुख है। उनके जन्म और माता-पिता को लेकर बहुत विवाद है। परन्तु इस बात में कोई विवाद नहीं है कि कबीर जुलाहा थे, क्योंकि उन्होंने अपनी कविता में स्वयं को कई बार जुलाहा कहा है।

कबीर रामानंद के शिष्य थे। उन्होंने खूब पर्यटन किया, संतों और सूफियों का सत्संग किया। कबीर के काव्य पर वेदांत, अद्वैत, नाथ पंथ के रहस्यवाद, हठयोग, कुंडलिनीयोग, सहजसाधना, इस्लाम के एकेश्वरवाद सभी का प्रभाव मिलता है। कबीर का वाणी-संग्रह 'बीजक' कहलाता है। इसके तीन भाग हैं – रमैनी, सबद और साखी। रमैनी और सबद के अंतर्गत गाने के पद आते हैं। जिनकी भाषा में ब्रज और पूरबी का रूप मिलता है। साखियों में दोहा छन्द के माध्यम द्वारा साम्प्रदायिक शिक्षा और सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। कबीर की भाषा 'सधुक्कड़ी' कही जाती है, साथ ही उन्होंने साहसपूर्वक जन बोली के शब्दों

का प्रयोग अपनी कविता में किया, बोली के ठेठ शब्दों के प्रयोग के कारण ही आ. हजारी प्रसाद ने उनको 'वाणी का डिक्टेक्टर' कहा है। उनकी तेजस्विता उनकी भाषा-शैली से ही प्रकट होती है।

उन्होंने 'राम' शब्द का प्रयोग भी किया, किन्तु उनके राम दाशरथसुत राम नहीं हैं, उन्होंने 'राम' का प्रयोग निर्गुण ब्रह्म के रूप में किया है :

'निर्गुण राम निर्गुण राम जपहु रे भाई'

'दशरथ-सुत तिहुँ लोक बखाना।

राम नाम का मरम है जाना॥'

कबीर के काव्य में अन्य तत्त्वों के साथ 'माधुर्य-भाव' भी मिलता है :

'हरि मोर पीउ मैं राम की बहुरिया।'

कबीर ने अज्ञान को मिटाने के लिए आत्मज्ञान का निर्देश दिया और आत्मज्ञान बिना गुरु के नहीं मिल सकता। इसलिए उन्होंने गुरु के महत्त्व को प्रतिपादित किया :

'हम भी पाहन पूजते होते बन के रोझ।

सतगुरु की किरपा भई सिर तें उतर्‌या बोझ॥'

कबीर भक्ति के बिना सारी साधनाओं को व्यर्थ और निरर्थक मानते हैं। वे अपने अनुभव, पर्यवेक्षण और बुद्धि को निर्णायक मानते हैं, शास्त्र को नहीं, इस दृष्टि से वे यथार्थबोध के रचनाकार हैं। इसीलिए वहाँ कथनी और करनी में अंतर नहीं। साथ-साथ वे गहरी मानवीयता और सहृदयता के कवि हैं, अक्खडता और निर्भयता उनके कवच हैं। अपने इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण कबीर आधुनिक भाव-बोध के बहुत निकट लगते हैं। कबीर की व्यंग्यात्मक एवं प्रहारात्मक शैली उनकी खास विशेषता है। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान दोनों सम्प्रदायों के कट्टरवाद, आडंबर, धर्मांधता, अज्ञानता आदि पर काफ़ी तीव्र प्रहार किए हैं। इसके अलावा 'माया' को भी उनके साहित्य में काफ़ी स्थान मिला है, कबीर ने माया को 'महा ठगिनी' कहा है और बताया है कि माया का पर्दा उठ जाता है, तब सारे भ्रम टूट जाते हैं, आत्मा या ब्रह्म परमात्मा या पर ब्रह्म में समा जाता है –

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहरि भीतर पानी।

फूटा कुंभ, जल जलहिं समाना, यह तत कथौ गियानी।

कबीर की महानता इस बात में थी कि 'मसि कागद छूयो नहिं कलम गह्यो नहिं हाथ' कहने वाले कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, इसलिए उनका ज्ञान अत्यन्त सरल और व्यावहारिक ढंग से प्रकट हुआ है। उनके ग्रंथ शिष्यों द्वारा लिपिबद्ध किए गए हैं। इसलिए भाषा, ग्रन्थ-संख्या आदि के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कहना बहुत कठिन है। कबीर का मूल और शुद्ध पाठ आज तक नहीं मिला।

अन्य प्रमुख सन्त कवि

रामानन्द के बारह शिष्यों में से एक **रैदास** भी निर्गुण सन्त काव्य धारा के महत्त्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। रैदास भी काशी के रहनेवाले थे। समय 15वीं शताब्दी बताया जाता है। रैदास की कुछ स्फुट बानी मिलती है। 'प्रभुजी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग-अंग बास समानी' इनका प्रसिद्ध भक्तिगीत है। **गुरुनानक** (1469) सिख सम्प्रदाय के संस्थापक थे, ये तलवंडी गाँव के निवासी थे, जो लाहौर से तीस मील दूर था। नानक आत्मज्ञानी थे। उनकी रचनाएँ 'गुरु ग्रन्थ साहब' में मिलती हैं।

दादूपंथ के प्रणेता **दादू दयाल** गुजरात से संबंधित बताए जाते हैं। क्षितिमोहन सेन के अनुसार दादू मुसलमान थे, उनका सही नाम दाउद था। दादू के गुरु का भी पता नहीं है। इनकी बानी में कई स्थान पर कबीर का नाम आया है, इनका मृत्यु-स्थल जयपुर है और वही दादू पंथियों का केन्द्र भी है। इनका संग्रह 'हरडेवानी' के नाम से छापा गया, बाद में एक शिष्य ने इसका संपादन 'अंगवधू' नाम से किया। कबीर की भाँति दादू निर्गुण निराकार की आराधना करते थे। भाषा सहज और सरल है – राजस्थानी से प्रभावित, अरबी-फारसी मिश्रित यह भाषा सुगम है।

दादू दयाल के एक शिष्य **सुंदरदास** का नाम भी इस क्षेत्र में उल्लेखनीय है। निर्गुण संत कवियों में ये सबसे ज़्यादा शास्त्रज्ञ एवं सुशिक्षित थे। इन्होंने गेय पदों के साथ-साथ कवित्त और सवैये भी लिखे। इन्होंने निर्गुण साधना और भक्ति के अतिरिक्त सामाजिक व्यवहार, लोकनीति और भिन्न-भिन्न आचार व्यवहार पर भी लिखा। लोकधर्म-लोकमर्यादा का ध्यान उन्होंने विशेष रखा।

रज्जब भी दादू दयाल के शिष्य और संत परम्परा के कवि थे।

मलूकदास का नाम भी इस परम्परा में उल्लेखनीय है, इनके दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं : 'ज्ञानबोध' और 'रामलीला'।

संतों की परंपरा आगे भी बराबर चलती रही और समय-समय पर नए-नए पंथ निकलते रहे। कबीर की संत परंपरा में दिल्ली में चरणदासी सम्प्रदाय, गाजीपुर में शिवनारायणी सम्प्रदाय, रोहतक में गरीबदासी सम्प्रदाय, रामचरण द्वारा रामसनेही सम्प्रदाय आदि स्थापित हुए। इनके बाद इस परम्परा में दो महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय बने। सतनामी सम्प्रदाय और राधास्वामी सम्प्रदाय। हिंदी की इस संत-परंपरा में केशवदास, यारी साहब, पलटू साहब, भीखा साहब, सहजो बाई, दयाबाई, दूलनदास आदि अनेक संत कवि हुए, जिनकी केवल स्फूट वाणी उपलब्ध है। इन संत कवियों की विचार परम्परा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं मिलता - कबीर जैसा ही खण्डन-मण्डन और सिद्धान्त-निरूपण मिलता है।

ज्ञानाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- इन कवियों पर नाथ-संतों की अंतस्साधना का प्रभाव है। हठयोग की पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग इन्होंने खूब किया है।
- इन कवियों ने प्रबंध काव्य में रचना न करके मुक्तक का ही उपयोग किया है।
- इन कवियों ने मनुष्य मात्र की मूलभूत एकता पर बल दिया है तथा वर्णाश्रम व्यवस्था, कर्मकांड पर तीव्र प्रहार किया है।
- इस काव्यधारा में गुरु, भक्ति, साधु-संगति, दया-क्षमा आदि का उपदेश दिया गया है।
- ये निर्गुण संत मूलतः भक्त हैं।
- इन संतों ने 'ज्ञान' पर सूफियों की अपेक्षा अधिक बल दिया है।
- इनकी कविता में भाषा के लोक प्रचलित रूप का अधिक प्रयोग हुआ है।

प्रेमाश्रयी शाखा (सूफी काव्य धारा)

इस्लामी शासन स्थापना के साथ ही देश में धार्मिक संघर्ष छिड़ गया था। लेकिन समाज में कुछ ऐसे भी व्यक्ति थे जो हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मावलंबियों में सौहार्द भाव जगाने की भावना रखते थे। कुछ मुसलमान ऐसे थे जो एक ओर तो सूफी धर्म की प्रचार-भावना में विश्वास रखते थे तो दूसरी ओर हिन्दू धर्म के आदर्शों को सौजन्य की दृष्टि से देखते थे, प्रेम काव्य की रचना का मूलाधार यही भावना है।

प्रेमाश्रयी धारा के कवियों पर इस्लाम के सूफी मत का सबसे अधिक प्रभाव है। सूफी मत का अपना विशेष तत्त्वज्ञान है, किन्तु वह सूफी कवियों में अलग से दिखलाई नहीं पड़ता। इस मत पर आधारित काव्य में प्रेम की उत्कट विरह-व्यंजना और प्रतीकात्मकता है; इसीलिए सूफी कवि 'प्रेम की पीर' के गायक माने गए हैं।

ऐतिहासिक या कल्पित व्यक्तियों के साथ किसी राजकुमारी, सेठ की पुत्री, गणिका या अप्सरा की प्रेमकथा की परंपरा प्राचीन है। किन्तु ये कथाएँ शुद्ध लौकिक प्रेम कथाओं के रूप में प्रचलित थीं। सूफी कवियों ने उन्हें ढाँचे में बाँधा। सूफी काव्य परंपरा के पहले कवि मुल्ला दाऊद हैं। इनकी रचना का नाम '**चंदायन**' है। यह पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना और उसकी विवाहिता प्रेमिका चंदा की प्रेमकथा पर आधारित है। इसकी भाषा अवधी है।

कुतुबन

कुतुबन ने 'मिरगावत' नामक ग्रंथ की रचना की थी। ये सोहरावर्दी पंथ के ज्ञात होते हैं। मिरगावत में नायक मृगी रूपी नायिका पर मोहित हो जाता है और खोज में निकल पड़ता है। अंत में शिकार खेलते समय सिंह के द्वारा मारा जाता है।

मलिक मुहम्मद जायसी (1492-1542 ई.)

हिन्दी में सूफी काव्य-परंपरा के श्रेष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं। ये अमेठी के निकट जायस के रहनेवाले थे, इसलिए जायसी कहलाए। ये अपने समय के सिद्ध फकीरों में गिने जाते थे। अमेठी के राजघराने में इनका बहुत मान था। इनकी तीन रचनाएँ उपलब्ध हैं – **अखरावट**, **आखिरी कलाम** और **पद्‌मावत**। 'अखरावट' में देवनागरी वर्णमाला के एक-एक अक्षर को लेकर रचना की गई है। 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है। लेकिन जायसी के कीर्ति का आधार 'पद्‌मावत' है।

'पद्‌मावत' प्रेम की पीर की व्यंजना करनेवाला विशद प्रबंधकाव्य है। यह दोहा-चौपाई में निबद्ध मसनवी शैली में लिखा गया है, जिसमें कवि ने अल्लाह हजरत मुहम्मद, गुरुओं, पीरों एवं शेरशाह सूरी आदि की वंदना की है। 'पद्‌मावत' की काव्य-भूमिका विशद एवं उदात्त है, कवि ने प्रारंभ में ही प्रकट कर दिया है कि जीवन और जगत को देखनेवाली उसकी दृष्टि व्यापक और परस्पर विरोध को आँकनेवाली है। कवि अल्लाह को इस विविधतामय सृष्टि का कर्ता कहता है। विविध प्राणियों, वस्तुओं, स्थितियों का परिगणन करता है, फिर उनमें परस्पर-विरोध देखता है। उनकी दृष्टि सामाजिक विषमता की ओर भी जाती है –

'कीन्हेसि कोई भिखारि कहि धनी। कीन्हेसि संपत्ति बिपति पुन धनी।
काहू भोग भुगुति सुख सारा। कहा काहू भूख भवन दुख भारा।'

जायसी ये सारी बातें अल्लाह की देन मानते हैं।

'पद्‌मावत' की कथा चितौड़ के शासक रतनसेन और सिंहलद्वीप के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्‌मावती की प्रेम-कथा पर आधारित है। कवि ने इसमें बड़ी कुशलता से कल्पना और ऐतिहासिकता का मिश्रण किया है। इसमें अलाउद्दीन खिलजी द्वारा चित्तौड़ पर आक्रमण और विजय प्रामाणिक ऐतिहासिक घटना है। कथा में हीरामन सुग्गा द्वारा संसार की अनिंद्य सुन्दरी पद्‌मावती के सौन्दर्य का वर्णन, रत्नसेन की रानी नागमती की ईर्ष्या, राजा की सुग्गा के बिना व्याकुलता, सुग्गा के साथ जोगी के वेष में रतनसेन का घर से निकल पड़ना तथा मार्ग की अनेक कठिनाइयाँ सहते हुए सिंहल द्वीप पहुँचकर पद्‌मावती से विवाह, राघवचेतन नामक पंडित द्वारा अलाउद्दीन से पद्‌मिनी के रूप की प्रशंसा, रतनसेन को अलाउद्दीन द्वारा दिल्ली ले जाना, गोरा-बादल का वीरतापूर्वक लड़कर रतनसेन को छुड़ा लाना। पद्‌मिनी और नागमती रतनसेन के शव के साथ सती हो जाती हैं, जब अलाउद्दीन चित्तौड़ पहुँचता है तो उसे उनकी राख मिलती है।

जायसी ने इस प्रेमकथा को आधिकारिक एवं आनुषंगिक कथाओं के ताने-बाने में बहुत जतन से बाँधा है। 'पद्‌मावत' मानवीय प्रेम की महिमा व्यंजित करता है। इसका कथानक सुगठित और भाषा शुद्ध अवधी है।

मंझन

मंझन जायसी के परवर्ती थे। उन्होंने **मधुमालती** की रचना की। इसमें नायक को अप्सराएँ उड़ाकर मधुमालती की चित्रसारी में भेज देती हैं और वहीं नायक नायिका को देखता है। इसमें मनोहर और मधुमालती की प्रेमकथा के समानांतर प्रेमा और ताराचंद की प्रेमकथा चलती है। इसमें प्रेम का बहुत ऊँचा आदर्श रखा गया है।

इन कवियों के अतिरिक्त अन्य सूफी कवि और उनके काव्य इस प्रकार हैं – उसमान ने **चित्रावली**, शेख नबी ने **ज्ञानद्वीप**, कासिम शाह ने **हंसजवाहिर**, नूरमुहम्मद ने **इन्द्रावती** और **अनुराग बाँसुरी** लिखी।

प्रेमाश्रयी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- इस काव्यधारा का काव्य प्रेम की पीर की व्यंजना करने वाला काव्य है। प्रेमिका परम सत्ता का प्रतीक है और प्रेमी साधक का।
- सूफी काव्य प्रबंधात्मक है, मुक्तक नहीं।
- यह दोहे-चौपाइयों में निबद्ध मसनवी शैली में लिखा गया है।
- इनकी भाषा अवधी है।

- इस काव्य के प्राय: सभी रचयिता मुसलमान हैं।
- इस धारा में रचित काव्य प्रतीकात्मक हैं। लौकिक कथा के साथ-साथ आध्यात्म की भी व्यंजना करते हैं।
- इन रचनाओं में विरह वर्णन एवं नख-शिख वर्णन श्रेष्ठ कोटि का है।

भक्ति की सगुण धारा : राम भक्ति शाखा

भक्ति की सगुण धारा की दो उपशाखाएँ हैं - राम भक्ति शाखा और कृष्ण भक्ति शाखा। राम की भक्ति निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं के भक्त करते हैं। अंतर 'राम' के अर्थ को लेकर है। कबीर के राम दशरथ सुत नहीं, किन्तु तुलसी के राम दशरथ सुत हैं। हिंदी क्षेत्र के भक्त कवियों का संबंध रामानंद से है। रामानंद, राघवानंद के शिष्य थे और रामानुजाचार्य परंपरा के आचार्य थे। ये काफी उदारमना गुरु थे। हिन्दी के निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के संत कवियों का संबंध उनसे जुड़ता है। उनका कोई काव्य ग्रंथ नहीं मिलता, केवल फुटकर रचनाएँ ही प्रचलित हैं। रामानंद और उनके शिष्यों द्वारा प्रचारित रामभक्ति के वातावरण में राम कथा के श्रेष्ठ हिन्दी कवि और गायक तुलसीदास का आविर्भाव हुआ।

तुलसीदास (1532-1623 ई.)

तुलसी का बचपन घोर दरिद्रता एवं असहाय अवस्था में बीता था। उन्होंने लिखा है कि जन्म के बाद ही इनके माता-पिता ने उनका त्याग कर दिया था। उनके जन्म स्थान के विषय में काफी विवाद है। किन्तु अधिकतर विद्वान राजापुर को ही उनका जन्म स्थान मानते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित १२ प्रामाणिक ग्रंथ उपलब्ध हैं : दोहावली, कवितावली, गीतावली, रामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्न, विनयपत्रिका, रमलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य-संदीपिनी, श्रीकृष्ण गीतावली।

तुलसीदास हिन्दी साहित्य के अत्यंत लोकप्रिय कवि हैं। उन्होंने हिन्दी क्षेत्र में मध्यकाल में प्रचलित दोनों काव्य भाषाओं ब्रज और अवधी में समान अधिकार से रचना की। एक और उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने मध्यकाल में व्यवहृत प्राय: सभी काव्यरूपों का उपयोग किया है। केवल तुलसीदास की ही रचनाओं को देखकर समझा जा सकता है कि मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में किन काव्यरूपों में रचनाएँ होती थीं। उन्होंने वीरगाथाकाव्य की छप्पय पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति, गंग आदि कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, रहीम के समान दोहे और बरवै तथा जायसी की तरह चौपाई-दोहे के क्रम से प्रबंध-काव्य रचे। पं. रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में - ''हिन्दी काव्य की सब प्रकार की रचनाशैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता किसी और को प्राप्त नहीं।''

'रामचरितमानस' तुलसीदास की अनन्य देन है। उनके अन्य ग्रंथ भी राम-भक्ति को ही केन्द्र में रखकर लिखे गए हैं। वे राम के अनन्य भक्त थे। राम ही उनकी कविता के विषय हैं। नाना काव्य रूपों में उन्होंने राम का ही गुणगान किया है, किन्तु उनके राम पर ब्रह्म होते हुए भी मनुज हैं और अपने देशकाल के आदर्शों से निर्मित हैं। तुलसी के राम ब्रह्म भी हैं - मानव भी। तुलसी ने वाल्मीकि और भवभूति के राम को पुन:प्रतिष्ठित नहीं किया। वे ब्रह्म होते हुए भी ऐतिहासिक स्थितियों के आधार पर व्यक्ति हैं। वे अपार मानवीय करुणा वाले, 'गरीब निवाज' हैं।

राम के ब्रह्मत्व और मनुजत्व को लेकर तुलसी के यहाँ जो दार्शनिक स्तर का द्वन्द्व है, उसे तुलसी ने बड़ी कुशलता पूर्वक सहस्थिति बनाकर चित्रित किया है। इसीलिए यूँ देखा जाए 'मानस' की पूरी कथा शंकर द्वारा पार्वती के प्रश्न या शंका के निवारण के रूप में ही प्रस्तुत की गई है। वैसे तो वे स्वयं भी 'रामचरितमानस' में अनेक मार्मिक अवसरों पर यह उद्घाटित करते हैं कि राम लीला कर रहे हैं। इन्हें सचमुच मनुष्य न समझ लेना। 'रामचरितमानस' में यह द्वंद्व बड़ी ही कुशलता से पाया गया है और राम में ब्रह्मत्व और मनुजत्व की सहस्थिति को बताया गया है।

तुलसी-साहित्य में हमें तत्कालीन स्थितियों के चित्रण भी मिलते हैं। विशेष रूप से रामचरितमानस और कवितावली में। दरिद्रता, रोग, अज्ञान, कामाशक्ति आदि कलियुग के प्रभाव से है। तुलसी ने महामारी, अकाल, बेरोजगारी आदि का मार्मिक वर्णन किया है। इसके अलावा उनकी रचनाओं में हमारा समग्र देश उसकी प्रकृति, वन, नदियाँ, पशु-पक्षी, फसलें, भाषा, मुहावरे, सौन्दर्य-असौन्दर्य सब बिखरे पड़े हैं। वे प्रधानत: किसान जीवन के कवि हैं। प्रकृति वर्णन में तो वे जैसे चित्रकार हैं।

नारी जीवन के लगभग सभी पहलुओं को उन्होंने चित्रित किया है, कहीं निन्दा की है, तो कहीं अपार करुणा भी दिखाई है। तुलसीदास ने तत्कालीन विषमताओं से दु:खी होकर ही रामराज्य की कल्पना की है। ऐसा राज्य कि जिसमें दैहिक, दैविक, भौतिक तापों से रहित सब-कुछ सुखद हो। तुलसी का रामाराज्य एक आदर्श व्यवस्था है, इसमें नायक एवं व्यवस्थापक तुलसी के राम हैं।

आदर्शनिर्माण के चलते ही तुलसी ने आदर्श पात्रों का भी निर्माण किया है - वे राम को आदर्श राजा, पुत्र, भाई, पति, स्वामी, शिष्य तथा सीता को आदर्श पत्नी एवं हनुमान को आदर्श सेवक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन सभी के साथ उनका सबसे महत्त्वपूर्ण और बड़ा आदर्श है : रामोन्मुखता, उससे विमुख होकर सभी संबंध त्याज्य हैं -

‘जाके प्रिय न राम-वैदेही

तजिए ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।’

एक सफल प्रबंधकार के रूप में भी तुलसीदास की छवि महत्त्वपूर्ण बनती है। उन्हें प्रबन्ध की कथा के नियोजन की पहचान थी, मार्मिक स्थलों की पहचान थी, वे पात्रों के भीतर पैठकर उसके व्यवहार को परख लेते थे। तभी तो उनके चित्रण के आधार पर कहा जाता है, ‘वे मानव-मन के परम-कुशल चितेरे हैं।’ रामचरितमानस में इस बात के दृष्टांत यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। जैसा अधिकार उन्हें प्रबन्ध-रचना पर था वैसा ही मुक्तक-रचना पर था। भाषा की दृष्टि से उनका ब्रज और अवधी पर समान अधिकार था।

तुलसी की महानता इसमें है कि वे लोक कवि हैं। उनकी भाषा लोकभाषा है। उनकी दी गई रामराज्य-आदर्श राज्य की कल्पना भी लोक हित के लिए है, इसलिए वे लोकनायक हैं। रामभक्ति शाखा के अन्यतम कवि तुलसीदास हिंदी भाषी जनता के सर्वाधिक प्रिय कवि हैं।

हालांकि तुलसीदास रामभक्ति शाखा के एक मात्र चमकते सितारे हैं, पर कई ऐसे कवि भी है जिन्होंने इस धारा में अपना योगदान दिया है। इतिहास की दृष्टि से इनका योगदान भी उल्लेखनीय है :

नाभादास (16वीं शताब्दी)

इनका प्रसिद्ध ग्रंथ है ‘भक्तमाल’। इस ग्रन्थ का अभूतपूर्व ऐतिहासिक महत्त्व है। इस ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसमें मध्यकालीन कवियों रामानंद, कबीर, तुलसी, सूर, मीरा आदि के संदर्भ में अनेक तथ्यों का पता लग जाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का यह एक आधारभूत ग्रंथ है।

रामभक्ति शाखा में प्राणचंद चौहान (17वीं सदी) का नाम भी उल्लेखनीय है। इन्होंने संवादशैली में ‘रामायण महानाटक’ लिखा। हृदयराम ने 1613 ई. में ‘भाषा हनुमन्नाटक’ लिखा। ‘रामचंद्रिका’ को ध्यान में रखा जाए तो केशव रामभक्ति शाखा के कवि ठहरते हैं किन्तु साहित्य के इतिहास की दृष्टि से वे रीतिकालीन आचार्य माने जाते हैं। उनका महत्त्व उसी दृष्टि से अधिक है। केशवदास ने ‘रामचन्द्रिका’ की रचना 1601 ई. में की थी।

रामभक्ति काव्य धारा की प्रवृत्तियाँ

- यह साहित्य विशेष रूप से सामाजिक मर्यादा और लोकमंगल का साहित्य है।
- इस काव्य में राम को ‘मर्यादा पुरुषोत्तम’ के रूप में चित्रित किया गया है।
- इस धारा के प्रमुख कवि तुलसीदास ने प्रचलित प्राय: सभी काव्यरूपों, छंदों और लोकगीतों के रूपों का उपयोग किया है।
- रामभक्ति काव्य में वैष्णव और शैव संप्रदायों में सामंजस्य लाने का प्रयास मिलता है।
- इस धारा में कुछ रसिक कवि भी हुए लेकिन उन्हें लोकप्रियता नहीं मिली।
- लोकहित के साथ-साथ इनकी भक्ति स्वांत: सुखाय थी।

● रामकाव्य की रचना अधिकतर दोहा-चौपाई छंद में हुई है।

कृष्णभक्ति शाखा

महाप्रभु वल्लभाचार्य (1977-1530) ने कृष्णभक्ति धारा की दार्शनिक पीठिका तैयार की और देशाटन करके इस भक्ति का प्रचार किया। भागवत धर्म का उदय प्राचीनकाल में ही हो गया था। श्रीमद्‌भागवत के व्यापक प्रचार से माधुर्य भक्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

कृष्णभक्ति में ज्ञान की अपेक्षा प्रेम और आत्मचिंतन की अपेक्षा आत्मसमर्पण की भावना प्रधान पाई जाती है। वल्लभाचार्य के अनुसार जिस भक्ति से कृष्ण या ब्रह्म की अनुभूति होती है वह स्वयं कृष्ण के अनुग्रह स्वरूप है, इस अनुग्रह का नाम पुष्टि है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य स्वयं सत्संगी और परम विद्वान थे। उन्होंने श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में गोवर्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का विशाल मंदिर बनवाया, वहीं अपनी गद्दी स्थापित की। मंदिर में होनेवाली कृष्णभक्ति की उपासना से हिन्दी साहित्य की कृष्ण भक्ति शाखा का गहरा संबंध है।

सूरदास (1478-1583 ई.)

कृष्ण-काव्य में भक्ति की परंपरा में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान सूरदास का है। सूरदास विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के सर्वप्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इनका समय और स्थान संदिग्ध है, किन्तु 'भक्तमाल' और 'चौरासी वैष्णवन' की वार्ता में इनके बारे में काफी जानकारी मिलती है। सूर ने स्वयं अंत:साक्ष्य प्रमाण के रूप में अपने जीवन के बारे में कुछ नहीं कहा। किन्तु यह निर्विवाद है कि सूरदास गायक थे गौघाट पर निवास करते थे, विनय के पद गाते थे, पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे। अकबर से भेंट भी की थी और अंत में परासोली में प्राण छोड़े थे। अंध थे, किन्तु किस अवस्था में अंध हुए यह नहीं कहा जा सकता। हालाँकि सूरदास ने अपने आपको 'जन्म आँधर' कहा है, किन्तु इसके शब्दार्थ पर जाए बिना हमें यह देखना होगा कि उनके काव्य में प्रकृति और जीवन का जो सूक्ष्म सौंदर्य चित्रित है उससे यह नहीं लगता कि वे जन्मांध थे। उनके विषय में ऐसी कहानी भी मिलती है कि तीव्र अंतर्द्वंद्व के किसी क्षण में उन्होंने अपनी आँखें फोड़ दी थी। इस सबसे यह निश्चित हो जाता है कि वे जन्मांध नहीं थे कालान्तर में अपनी आँखों की ज्योति खो बैठे थे।

सूरदास के ग्रंथों में सूरसागर, सूर सारावली और साहित्यलहरी विशेष रूप में उल्लेखनीय है। इनमें सूर सारावली और साहित्य लहरी सूरदास की है या नहीं इनमें मतभेद है, किन्तु सूरसागर के बारे में ऐसा कोई मतभेद नहीं। इसकी रचना 1530 के बाद मानी जाती है। इसका आधार भागवत है और इसमें विष्णु के अवतारों, विनय, भक्ति और पौराणिक कथाओं का चित्रण है।

एक यह किंवदन्ती भी प्रचलित है कि जिस समय वल्लभाचार्य और सूरदास की भेंट हुई तब तक वे विनय के पद ही गाया करते थे और अत्यन्त दीनभाव के साथ-साथ संसार की नि:सारता का अनुभव करते थे। महाप्रभु ने उनकी प्रतिभा को पहचाना। उनसे 'घिघियाना' छुड़वाकर उन्हें माधुर्य भक्ति की ओर खींचा और वात्सल्यभाव के गायन की शक्ति को बताया। इसी से सूरदास कृष्णभक्ति की ओर प्रेरित हुए। उनकी रचनाओं में शांत, दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य पाँचों प्रकार के भक्तिभाव समाविष्ट हैं, किन्तु सबसे अधिक माधुर्यभाव है।

मूल रूप से सूरदास माधुर्य वात्सल्य और शृंगार के कवि हैं। वात्सल्य के क्षेत्र में भारतीय ही नहीं विश्वस्तर पर उनके कोई समकक्ष नहीं, यह उनकी ऐसी विशेषता है कि मात्र इसी के आधार पर वे साहित्य के क्षेत्र में अत्यंत ऊँचे स्थान के अधिकारी माने जा सकते हैं। बाल जीवन का ऐसा निरीक्षण और चित्रण कोई महान मानवप्रेमी और सहृदय व्यक्ति ही कर सकता है। सोने में सुहागा यह है कि सूरदास ने वात्सल्य और शृंगार का वर्णन जनसामान्य की भाव भूमि पर किया है। मार्मिकता, मनोवैज्ञानिकता, स्वाभाविककता ये सभी जीवन के यथार्थ के रूप में विविध आयामों में सूर साहित्य में आए हैं। किन्तु सूर ने इन्हें जितना सहज बनाया है, उतने ही सहज तौर से महान और आध्यात्मिक संदर्भ से जोड़ दिया है। राधा-कृष्ण की प्रेमलीला और कृष्ण की बाल लीला को प्रकृति और कर्म के विशाल क्षेत्र का संदर्भ प्रदान कर दिया है। लोक साहित्य की

जैसी जीवन्तता सूरदास में है ऐसी कहीं नहीं। सूर का बाललीला वर्णन अत्यंत मार्मिक, मनोवैज्ञानिक और जीवन्त है –

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
कितिक बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति, 'बल' की बेनी सम ह्वै हैं लांबी मोटी।

इसके अतिरिक्त सूरदास ने लौकिक आचारों में जन्मोत्सव, छठी नामकरण, अन्य प्रसंग आदि का वर्णन भी किया है। पुष्टिमार्गियों के नित्य होनेवाले कीर्तन का भी उन्होंने सुंदर वर्णन किया है।

सूरदास के वात्सल्य वर्णन में एक ऐसा पक्ष भी है जो वियोग से जुड़ा है और अत्यन्त मार्मिक है। कृष्ण के चले जाने पर नंद यशोदा की व्याकुलता का वर्णन इसके अंतर्गत आता है। कृष्ण से जुड़ी मधुर स्मृतियाँ उन्हें विकल कर देती हैं। उनकी इस व्याकुलता में सारा ब्रज शामिल है।

राधा और कृष्ण का प्रेम सूर के यहाँ परिचय से प्रारंभ होता है और जन्म-जन्मांतर के साथ में बदल जाता है। प्रकृति और कर्मक्षेत्र में यह प्रेम पुष्पित और प्रल्लवित होता है। विशेषता यह है कि यह प्रेमलीला जीवनलीला से कहीं भी अलग नहीं है। सूर का यह पद जीवन्त चित्र का अद्‌भुत उदाहरण है :

'बूझत स्याम कौन तू गोरी।
कहाँ रहति, काकी है बेटी, देखी नहीं कहूँ ब्रज-खोरी।
काहे कौ हम ब्रज-तन आवति, खेलति रहति आपनी पौरी।
सुनत रहति स्त्रनावननि नंद ढोटा, करत फिरत माखन-दधि चोरी।
तुम्हारौ कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ संग मिलि जोरी।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी॥

सूर ने राधा और गोपियों के माध्यम से तत्कालीन नारी सम्बन्धी विचारों को भी स्थान दिया है। उस समय नारी स्वाधीन नहीं थी, किन्तु सूरदास ने गोपियों के माध्यम से नारियों को उस चार दीवारी और सामाजिक व्यवस्था को तोड़ने के लिए प्रेरित किया है जो उनकी साधना में बाधक है। सूर साहित्य में रासलीला साधना का प्रतीक है।

इसी तरह उनका विरह-वर्णन भी अद्वितीय बन पड़ा है। गोपियाँ और राधा कृष्ण के विरह में ब्रज में अत्यधिक व्याकुल हो रही हैं। राधा तो इस पीड़ा को सहन न कर सकने के कारण विक्षिप्त-सी हो गई है। उसे कुछ सूझ नहीं पड़ता, मात्र कृष्ण के प्रति अपने प्रेम को याद करते-करते वह बावरी हो गई है, मलीन हो गई है –

'अति मलीन वृषभानु कुमारी
हरि-स्त्रमजल अंतर-तनु भीजे, ता लालच न धुआवति सारी॥
अधोमुख रहति उरध नहीं चितवति ज्यों, गथ हारे थकित जुआरी॥
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यों नलिनी हिमकर की मारी॥
हरि-संदेश, सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिनि दूजे अलिजारी॥
सूर स्याम बिनु यों जीवति हैं, ब्रजबनिता सब स्यामदुलारी॥

इसके अलावा यशोदा का वात्सल्य विरह भी 'संदेशो देवकी सो कहियो,' नामक पद में मार्मिक ढंग से व्यक्त हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं सूरदास हिन्दी साहित्य में कृष्ण के जीवन से संबंधित प्रसंगों को अमर कर गए हैं। वे मुक्त सम्राट है जहाँ राम-भक्ति के क्षेत्र में तुलसीदास को प्रबंधों की रचना करनी पड़ी वहाँ सूरदास मुक्तकों के माध्यम से साहित्य में अपना अमर स्थान बना गए। ब्रज-भाषा को उन्होंने चरम उत्कर्ष प्रदान किया। इस प्रकार वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने सूरदास को

अष्टछाप के कवियों में जो महत्त्वपूर्ण स्थान दिया सूर ने उसे सार्थक किया और व्यक्ति एवं साहित्य के बीच का सेतु बने।

नंददास : नंददास 16वीं शती के अंतिम चरण में विद्यमान थे। इनके विषय में भक्तमाल में लिखा है 'चन्द्रहास-अग्रज सुहृद परम प्रेम-पथ में पगे।' दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता के अनुसार ये तुलसीदास के भाई थे, किन्तु अब यह बात प्रामाणिक नहीं मानी जाती। इनके काव्य के विषय में यह उक्ति प्रसिद्ध है: 'औरे कवि गढ़िया, नंददास जड़िया' इसमें प्रकट होता है कि इनके काव्य का कला-पक्ष महत्त्वपूर्ण है। इनकी प्रमुख कृतियों के नाम इस प्रकार हैं - रासपंचाध्यायी, सिद्धांत पंचाध्यायी, भागवत दशम स्कंध, रुक्मिणी मंगल, रूपमंजरी, रसमंजरी, दानलीला, मानलीला आदि। इनके यश का आधार रासपंचाध्यायी है। रासपंचाध्यायी भागवत के 'रासपंचाध्यायी' अंश पर आधारित है। यह रोला छंद में रचित है। कृष्ण की रासलीला का वर्णन इस काव्य में कोमल एवं सानुप्रासिक पदावली में किया गया है, जो संगीतात्मकता से युक्त है :

'ताही छन उडुराज उदित रस-रास-सहायक,
कुंकम-मंडित-बदन प्रिया जनु नागरि नायक।
कोमल किरन अरुन मानो बन व्यापि रही यों,
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ि घुरि रह्यों गुलाल ज्यों।'

भँवर गीत में उन्होंने रोला, छंद के साथ ध्रुवक जोड़कर उसे और अधिक संगीतात्मक बना दिया है। सिद्धांत पंचाध्यायी भक्ति सिद्धांत का परिचायक ग्रंथ है और रसमंजरी नायिका भेद का। रूप मंजरी में इसी नाम की एक भक्त महिला का चरित्र वर्णित है। नंददास ने अनेक काव्य-रूपों में रचना की है। वे काव्य-शास्त्र से सुपरिचित कवि ज्ञात होते हैं।

अष्टछाप के शेष कवियों ने भी लीला-गान के पद कहे हैं, जो प्रधानत: शृंगारी हैं। राधा और कृष्ण के रूप एवं शृंगार के साथ-साथ उनके चरित का गुणगान इन कवियों का विषय रहा है। इनकी रचनाएँ बहुत कुछ समान हैं।

कुंभनदास : ये वल्लभाचार्य के प्रिय शिष्य थे। जाति से शूद्र थे, किन्तु इन्हें मंदिर में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया था। इन्हें परमानंददास का समकालीन माना जाता है। इनकी प्रसिद्धि एक विशिष्ट प्रसंग से है। कहा जाता है कि एकबार अकबर ने इन्हें अपनी राजधानी फतेहपुर सीकरी बुलाया था, किन्तु अत्यन्त स्वाभिमानी होने के कारण इन्होंने जवाब दिया था -

'संतन को कहा सीकरी सों काम,
आवत जान पनहियाँ घिस गईं बिसर गयो हरि नाम।'

इनका कोई संपूर्णग्रंथ नहीं मिलता मात्र कुछ फुटकर पद मिलते हैं।

अष्टछाप के इन कवियों के अलावा छीत स्वामी, गोविंद स्वामी और चतुर्भुजदास के भी फुटकर पद मिलते हैं जिनसे कृष्णभक्ति का लगातार प्रवाह रहता है। इनके अलावा राधावल्लभ संप्रदाय के प्रवर्तक हितहरिवंश का भी नाम इस धारा में उल्लेखनीय है।

नरोत्तमदास (1493-1542 ई.)

नरोत्तमदास सीतापुर में बाड़ी नामक स्थान के निवासी थे। उनका 'सुदामाचरित' अत्यंत प्रसिद्ध ग्रंथ है। जो हिन्दी साहित्य का अमूल्य धरोहर है। यह ब्रजभाषा में है। उनकी भाषा भी व्यवस्थित और परिमार्जित है।

मीराबाई (1498-1546 ई.)

मीरा के जीवन के विषय में तथा उनके व्यक्तित्त्व के संदर्भ में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। इनका विवाह महाराणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ हुआ था। कहा जाता है कि विवाह के कुछ वर्षों पश्चात् जब उनके पति का देहांत हो गया तो ये साधु-संतों के बीच भजन-कीर्तन करने लगीं। राणा परिवार को यह पसंद नहीं था। उन्होंने मीरा को नाना प्रकार के कष्ट दिए। खिन्न होकर मीरा ने राजकुल का त्याग कर दिया। इनकी मृत्यु द्वारिका में हुई।

मीरा मध्यकालीन नारी के स्थिति का प्रतिनिधित्त्व करती हैं। ऐसा समाज और ऐसी तथाकथित मर्यादा कि जिसमें नारी

भक्ति के लिए भी स्वतंत्र नहीं थी। तभी तो मीरा ने गोपियों की तरह विद्रोह का मार्ग अपनाया था।

मीरा ने अपने इष्टदेव गिरधर नागर का जो रूप चित्रित किया है, वह अत्यंत मोहक है। वे भक्त कवयित्री हैं। उनकी व्याकुलता एवं वेदना उनकी कविता में निश्छल अभिव्यक्ति पाती है।

मीरा के काव्य में निर्गुण–सगुण दोनों साधनाओं का प्रभाव है। नाथ मत का भी प्रभाव दिखाई पड़ता है। उन्होंने रामकथा से संबंधित कुछ गेयपद भी लिखे हैं।

रसखान (1548-1628 ई.)

रसखान पठान सरदार थे। इनका उल्लेख 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में मिलता है। माना जाता है कि गोसाईं विठ्ठलदास से दीक्षा लेकर रसखान लौकिक प्रेम से कृष्णप्रेम की ओर उन्मुख हुए। इनकी प्रसिद्ध कृति 'प्रेमवाटिका' है। इसका रचनाकाल 1614 ई. माना जाता है।

रसखान ने कृष्ण का लीलागान 'कवित्त–सवैयों' में किया है। सवैया छंद उन्हें सिद्ध था। जितने सरस, सहज, प्रवाहमय सवैये रसखान के हैं, उतने शायद ही किसी अन्य हिन्दी कवि के हों। रसखान का कोई ऐसा सवैया नहीं मिलता जो उच्च स्तर का न हो। उनके सवैयों की मार्मिकता का बहुत बड़ा आधार दृश्यों और बाह्यांतर स्थितियों की योजना में है। वही योजना रसखान के सवैयों के ध्वनि–प्रवाह में है। ब्रजभाषा का ऐसा सहज प्रवाह अन्यत्र बहुत कम मिलता है। रसखान सूफ़ियों का हृदय लेकर कृष्ण की लीला पर काव्य रचते हैं। उनमें उल्लास, मादकता और उत्कटता तीनों का संयोग है। ब्रज–भूमि के प्रति जो मोह रसखान की कविताओं में दिखाई पड़ता है, वह उनकी विशेषता है। रसखान प्रेम–भावना की अछूती स्थितियों की योजना करते हैं। इसलिए रसखान के यहाँ दूसरों की कही हुई बातें कम मिलेंगी। निम्नलिखित सवैये में गोपी की जिस मन:स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया गया है, वह समूचे भक्तिकाव्य में दुर्लभ है –

मोर पखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पितांबर लै लकुटी बन गोधन ग्वालन संग फिरौंगी।
भावतो सोई मेरो रसखानि सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी।

अर्थात् सब स्वाँग किया जा सकता है, किन्तु कृष्ण के अधरों पर रखी हुई मुरली को अपने अधरों पर रखने का स्वाँग नहीं किया जाएगा।

रहीम (1556-1627 ई.)

रहीम का पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। उनकी गणना कृष्ण भक्त कवियों में ही की जा सकती है। रहीम ने 'बरवै–नायिका भेद' भी लिखा है, जिससे उनकी यह रचना तो निश्चित रूप से रीतिकाव्य की कोटि में रखी जाएगी, किन्तु रहीम को भक्त हृदय मिला था। उनके भक्तिपरक दोहे उनके व्यक्ति और रचनाकार का वास्तविक प्रतिनिधित्व करते हैं। कहते हैं, उनके मित्र तुलसी ने बरवै रामायण की रचना रहीम के बरवै काव्य से उत्साहित होकर की। रहीम सम्राट अकबर के प्रसिद्ध सेनापति बैरम खाँ के पुत्र थे। वे स्वयं योद्धा थे। गंग ने रहीम पर जो छप्पय लिखा है, उससे प्रकट होता है कि रहीम पराक्रमी सेनानी थे।

'खलभलित सेस कवि गंग भन–अमित तेज रविरथ खस्यो।
खानान खान बैरम सुवन जबहिं क्रोध करि तंग कस्यो।'

रहीम अरबी, फारसी, संस्कृत आदि कई भाषाओं के जानकार थे। वे बहुत उदार, दानी और करुणावान थे। अंत में उनकी मुगल दरबार से नहीं पटी और जनुश्रुति के अनुसार उनके अंतिम दिन तंगी में गुजरे। रहीम की अन्य रचनाएँ हैं : रहीम दोहावली या सतसई, शृंगार सोरठा, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी। उन्होंने खेल कौतुक्रम नामक ज्योतिष का भी ग्रंथ रचा है, जिसकी भाषा संस्कृत–फारसी मिश्रित है। रहीम ने तुलसी के समान अवधी और ब्रज दोनों में अधिकारपूर्वक काव्य–रचना की है।

रहीम के भक्ति और नीति के दोहे आज भी लोगों की जुबान पर हैं।

कृष्णभक्ति काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ

- यह काव्य कृष्ण की लीला पर आधारित लीला काव्य है।
- कृष्णभक्ति काव्य प्रधानत: शृंगार काव्य है।
- वात्सल्य सख्य, माधुर्य एवं दास्य भाव की भक्ति का प्राधान्य इस काव्य में है।
- इसमें संयोग एवं वियोग दोनों का उत्कृष्ट वर्णन है।
- कृष्ण भक्ति काव्य ब्रजभाषा में है।
- गेय शैली का प्रयोग हुआ है।
- संपूर्ण साहित्य मुक्तक शैली में है।
- कृष्ण भक्ति काव्य में ब्रह्म के सगुणरूप का मंडन और निर्गुण रूप का खंडन है।
- कृष्ण भक्ति काव्य रीति काव्य का आधार बना।

भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताएँ

भक्तिकाल सही अर्थ में हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग है। क्योंकि यह लोक से जुड़ा हुआ साहित्य था। इसने लोकजीवन को रस-रंजित कर दिया था। भारत की सभी भाषाओं के साहित्य पर भक्ति आन्दोलन का प्रभाव है। हिन्दी भक्त कवियों ने आध्यात्मिक साधना की ही बात नहीं की, उन्होंने सामंतवादी युग में सामंतवादी व्यवस्था की अमानवीयता की आलोचना की, यथासंभव हर प्रकार की पीड़ा एवं हिंसा का विरोध किया। इस युग ने अनेक श्रेष्ठ कवि दिए - कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, मीरा, नानक आदि। मुसलमान कवियों का विशेष योगदान इस युग की विशेषता है। सगुण भक्ति में रसखान-रहीम का आविर्भाव अद्वितीय घटना है। प्रबंधकार सूफी कवि भी अन्य भाषा-साहित्य में शायद ही मिलें। इसका कारण यह है कि इस्लामी संस्कृति का प्रभाव सबसे पहले उत्तर भारत में हुआ। उसकी पहली टक्कर यहीं हुई, इसलिए साधनाओं का समन्वय भी यहाँ अधिक दिखाई पड़ा। यह साहित्य व्यापक मानवीय संवेदना के साथ-साथ व्यवस्थाओं को चुनौती देनेवाला साहित्य है।

रीति काल (1700-1850 ई.)

हिन्दी साहित्य का मध्यकाल मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित है। (1) भक्तिकाल और (2) रीतिकाल। भक्तिकाल के बाद जिन परिस्थितियों में रीतिकाल का आविर्भाव हुआ वे परिस्थितियाँ राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक सभी प्रकार की थीं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने रीतिकाल के उद्भव पर विचार करते हुए उसमें आर्थिक कारणों को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना, किन्तु अन्य कारण भी काफी महत्त्वपूर्ण थे। द्विवेदी के अनुसार आर्थिक कारण इस प्रकार कि जब भक्तिकाल के समय से ही मुगलकाल के अंतिम समय में आर्थिक दृष्टि से समाज में दो वर्ग हो गये थे। (1) जिसमें उत्पादक वर्ग था (2) समृद्ध भोक्ता वर्ग था। उत्पादक वर्ग का काम भोक्ता वर्ग को प्रसन्न करके जीविका निर्वाह करना था। इसलिए उन्होंने प्राचीन ग्रंथों का जिनमें रसशास्त्र, कामशास्त्र और नाट्यशास्त्र आदि मुख्य थे सहारा लिया और भोक्ताओं और आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए काव्य रचना करने लगे। यही साहित्य रीतिकाल का साहित्य कहलाया।

दूसरी ओर एक यह मत भी है कि सत्रहवीं शताब्दी में जब धार्मिक आंदोलन की पवित्रता समाप्त हो गई तो प्रेम और शृंगार से डूबे हुए वासनामय साहित्य को स्थान मिला। राधा-कृष्ण का लीलारूप कवित्त और सवैयों में आने लगा। यही कारण था कि कवियों ने जीवनयापन के लिए राजदरबारों का आश्रय लिया। अपने आश्रयदाता राजाओं पर कविता लिखी। जो शृंगार में डूबी हुई थी और बहाना बनाया राधा-कृष्ण की कविता का। इनका सूत्र था -

''आगे के सुकवि रीझि हैं तो कविताई नाहिं तौ राधा-कन्हाई को सुमिरन को बहानो है।''

इसी गुण के कारण कुछ लोग इसे शृंगारकाल भी कहते हैं, किन्तु शृंगारकाल कहना उचित नहीं है क्योंकि इस युग में मात्र शृंगार नहीं लिखा गया। कवि भूषण ने वीररस की कविता भी की है।

रीतिकाल का आशय रीति अर्थात् कवित्त रीति या सुकवि रीति अथवा काव्यरीति सम्बन्धीकाल से भी लिया गया, क्योंकि इस युग में काव्य रीति के ग्रन्थों में काव्यांग निरूपण का प्रयास किया गया। किन्तु इस बहाने से बात तो कवियों ने शृंगार की ही की। रीति और शृंगार एक दूसरे से भलीभाँति जुड़कर आए। इस काल के काव्य की विशेषता यह रही कि इसके अधिकतर कवि राज्याश्रित थे। इन कवियों में कुछ ऐसे थे जो **रीतिबद्ध** कहलाए, जिन्होंने रीतिशास्त्र के बंधन में कविता लिखी। कुछ रीति **मुक्त** कहलाए जो इन बंधनों से मुक्त थे तथा कुछ **रीति सिद्ध** कहलाए, जिन्होंने रीतिशास्त्र पर सिद्धि हाँसिल कर ली थी। वे उसे जानते-समझते थे किन्तु बँधे हुए नहीं थे। साथ-साथ इस युग में आचार्य और कवि ऐसे दो रूप भी देखे गए। क्योंकि कुछ विद्वान ऐसे थे कि जिन्होंने मात्र रीतिग्रन्थ लिखे वे आचार्य कहलाए और कुछ एसे थे कि जिन्होंने रीतिशास्त्र भी लिखा और उसे समझाने के लिए उसमें काव्य रचना भी की। वे आचार्य-कवि कहलाए। इन काल की काव्यभाषा प्रमुख रूप से ब्रजभाषा है। यह युग मुक्तकों का युग है। इस काल में जो कुछ भी लिखा गया उस पर राजनैतिक और सामाजिक वातावरण का असर है।

प्रमुख रीतिबद्ध कवि

केशवदास (1555-1617 ई.)

केशवदास ने हिन्दी में सर्वप्रथम शास्त्रीय विवेचना की। वे हिन्दी के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। उनका मत अलंकारवादी है। कुछ विद्वान मानते हैं कि उन्होंने आनंदवर्धन, मम्मट और भामह आदि आचार्यों का अनुकरण करके अपना मत दिया है। उनके मन में मौलिकता नहीं है किन्तु हिन्दी काव्यशास्त्र की दृष्टि से उनका स्थान ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

केशवदास ओरछा नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के सभा-कवि थे। इनका वहाँ बहुत सन्मान था। इनके ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण है - कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, वीरसिंह चरित, विज्ञान गीता, रतनबावनी और जहाँगीर-जस चंद्रिका।

इन ग्रन्थों में कविप्रिया और रसिकप्रिया हिन्दी काव्यशास्त्र के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। रामचन्द्रिका, रामकाव्य परंपरा का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसकी संवाद-शैली अद्वितीय है, किन्तु उत्तम काव्य के अन्य गुण केशव के हाथों से सरक जाते हैं। क्योंकि उनकी चमत्कार प्रियता, छंदज्ञान का उपयोग करने की लालच, अलंकारों का उपयोग करने की आतुरता और वाग्विदग्धता उनकी सहृदयता को कुंठित कर देती है। फिर भी हिन्दी काव्यशास्त्र में केशवदास का काफी महत्त्व है।

देव (1673-1767 ई.)

देव का पूरानाम देवदत्त है। वे रीतिकाल के श्रेष्ठ कवियों में से एक हैं। वे अनेक आश्रयदाताओं के यहाँ रहे और उनकी रुचि के अनुकूल रचनाएँ कीं। इनके प्रमुख ग्रंथ 'भावविलास', 'भवानी विलास', 'रस विलास', 'सुखसागर तरंग', 'अष्टयाम', 'प्रेमचंद्रिका', 'काव्य रसायन' आदि हैं।

देव ने लक्षण-ग्रंथ लिखे हैं, परन्तु वे मूलत आचार्य नहीं, कवि हैं। इन्होंने प्रकृति के क्रियाकलाप को देखकर अनेक उत्तम रूपक बाँधे हैं।

डार द्रुम पालना बिछौना नव पल्लव के,
सुमन झिंगूला सोहै तन छवि भारी दे।
पवन झुलावै, केकी-कीर बतरावै देव
कोकिल हलावै-हुलसावै कर तारी दै।
पूरित पराग सों उतारो करे राई नोन,
कंजकली नायिका लतानि सिर सारी दै।
मदन महीप जू को बालक वसंत ताहि,
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।

भूषण (1613-1715 ई.)

भूषण रीतिकाल के दो प्रसिद्ध कवियों चिंतामणि और मतिराम के सगे भाई थे। इन्हें 'भूषण' नाम चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने दिया था। ये वीर रस के कवि थे। इन्होंने 'शिवराज भूषण', शिवा बावनी, छत्रसाल दसक नामक ग्रन्थ लिखे हैं।

रीति कालीन कविता के मुख्य स्वर श्रृंगार से हटकर भूषण ने वीररस में कविता लिखी। उन्होंने अपनी काव्य पंक्तियों में अनेक ऐतिहासिक तथ्यों का भी उल्लेख किया है। शिवाजी के प्रति उनकी निष्काम भक्ति उनके काव्य में झलकती है।

मतिराम (1603-1701 ई.)

मतिराम रीति काल के प्रसिद्ध आचार्य कवि हैं। ये कवि भूषण और चिंतामणि के भाई हैं। 'छंदसार', 'रसराज', 'साहित्य सार', 'लक्षण श्रृंगार' और 'ललित ललाम' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। मतिराम की भाषा सरल तथा प्रवाहयुक्त है। शब्द चयन में उन्हें निपुणता हासिल है। उनकी भाषा ब्रजभाषा है। वे रीतिकालीन चमत्कारिता से लगभग अछूते रचनाकार हैं।

पद्‌माकर (1753-1833 ई.)

पद्‌माकर का जन्म बाँदा में हुआ था। वे रीतिकाल के अत्यंत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि हैं। जयपुर और ग्वालियर के दरबारों में इनका बड़ा आदर था। इनके प्रमुख ग्रंथ 'हिम्मत बहादुर बिरुदावली', 'जगद्‌विनोद', 'पद्‌माभरण', 'प्रबोध पचासा', 'राम रसायन', 'गंगालहरी' प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

पद्‌माकर की कविता श्रृंगार, भक्ति और वीरता तीनों क्षेत्रों से समान रूप से जुड़ी है। वे विभिन्न भावों के अनुरूप भाषा को सहज रूप से ढाल लेने में कुशल थे।

पद्‌माकर के काव्य की विशेषता भावों को व्यंजित करने में समर्थ सजीव चित्र खींच देने में है –

फागु की भीर अभीरन में गहि गोबिंद लै गई भीतर गोरी,
भाइ करी मन की पद्‌माकर ऊपर नाई अबीर की झोरी।
छीनि पितंबर कम्मर तें विदा दई मीड़ि कपोलन रोरी,
नैन नचाय कही मुसुकाय लला फिरि आइयो खेलन होरी।

गंग (16 वीं शताब्दी)

गंग अकबर के दरबारी कवि थे। ये रहीम के मित्र थे। इनका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इनकी कविताएँ मुख्यत: श्रृंगार की हैं। समकालीन और परवर्ती कवि इनका नाम बड़े सम्मान से लेते हैं।

प्रमुख रीति सिद्ध कवि

बिहारी (1600-1663 ई.)

बिहारी रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कवि रहे। वे रीतिसिद्ध कवि थे, उन्होंने रीतिग्रन्थ नहीं लिखा किन्तु काव्यरीति उनकी रचनाओं में रची-बसी है। बिहारी जयपुर के राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। 'बिहारी-सतसई' उनकी कीर्ति का आधार है। इसके बारे में कहा जाता है :

''सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर॥''

बिहारी सतसई की जितनी टीकाएँ लिखी गई उतनी शायद किसी ग्रंथ की लिखी गई हों। बिहारी मूलत: श्रृंगार के कवि हैं, हालांकि भक्ति और नीति के भी कुछ दोहे उन्होंने लिखे हैं। बिहारी की बहुज्ञता उनके दोहों से बरबस प्रकट होती है। वैदक, ज्योतिष, गणित, रसोई आदि का ज्ञान तथा दैनंदिन जीवन के चित्रों में देवर, जेठ, भाभी, ननद, सास, पड़ोसिन एवं प्रकृति के अनेक चित्र मिलते हैं।

बिहारी का प्रस्तुत दोहा ऐतिहासिक महत्त्व रखता है :

''नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहि बिकास इहि काल।
अली कली ही सों बंध्यो, आगे कौन हवाल॥''

बिहारी ने दोहे छन्द को उसके सौन्दर्य की चरमसीमा पर पहुँचा दिया। उनका एक-एक दोहा जैसे गागर में सागर है। एक संपूर्ण चित्र है। उनकी भाषा उत्कृष्ट ब्रजभाषा है, उनकी शैली सामासिक है। सबसे छोटे छन्द 'दोहा' में उन्होंने सबसे बड़ी बात कह दी है।

''तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस-राग, रति-रंग।
अनबूड़े, बूड़े तरे, जे बूड़े सब अंग॥''

प्रमुख रीतिमुक्त कवि

घनानंद (1673-1760 ई.)

घनानंद का जन्म उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर में हुआ था। वे दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के मीर मुंशी थे। कहा जाता है कि सुजान नाम की नर्तकी से वे प्रेम करते थे। उसी से संबद्ध एक घटनाक्रम में बादशाह ने आज्ञा के उल्लंघन के अपराध में घनानंद को दरबार से निकाल दिया था। विरक्त होकर वे वृन्दावन चले गए और वैष्णव होकर काव्य रचना करने लगे। उनकी कविता में 'सुजान' शब्द बार-बार आता है। प्रेम के संबंध में प्रेयसी का और भक्ति के संबंध में कृष्ण का सूचक बनकर आता है।

वे मूलतः प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। प्रेम की पीर और उसकी गूढ़ अंतर्दशाओं के चित्रण में वे बेजोड़ माने गए हैं। शृंगार के अंतर्गत विरह का उन्होंने बड़ा सूक्ष्म वर्णन किया है। इनका नायिका वर्णन भी बड़ा सूक्ष्म व सहज है। ब्रजभाषा पर इनका अच्छा अधिकार है। 'सुजान सागर', 'विरहलीला', 'कोकसार', 'रसकेलि वल्ली' और 'कृपाकांड' इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं।

आलम (18वीं शताब्दी)

कवि आलम औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम के आश्रय में रहते थे। वे ब्राह्मण थे किन्तु उन्होंने शेख नामक रंगरेजिन से विवाह कर लिया। वह भी कवयित्री थी। आलम के संग्रह का नाम 'आलम केलि' है। ये प्रेम की दीवानगी के कवि हैं।

बोधा (18 वीं शताब्दी)

बोधा पन्ना नरेश के राज्याश्रित कवि थे। पन्ना दरबार की सुभान या सुबहान नामक नर्तकी से इन्हें प्रेम था, इनका 'बिरहबारीश' उसी से संबंधित है। इसके अतिरिक्त इनकी दूसरी रचना 'इश्कनामा' है। इनकी रचनाओं में 'प्रेम की पीर' की सुंदर व्यंजना हुई है।

ठाकुर (1774-1823 ई.)

ठाकुर का जन्म ओरछा में हुआ था। इनके पूर्वज काकोरी (अवध)के निवासी थे। इनकी कविता हृदय की सच्ची अनुभूति की कविता है। उन्होंने लिखा है कि मीन, मृग, खंजन जैसे उपमानों का प्रयोग सीख लेने से कविता नहीं आती। कविता की बात बहुत बड़ी होती है, लोग सभी के बीच कविता ऐसी गिराते हैं मानो ढेला -

ढेल सो बनाय आय मेलत सभी के बीच
लोगन कवित्त कीन्हों खेल करि जान्यो है।

गुरु गोविंदसिंह (1666-1708 ई.)

सिखों के दसवें गुरु गोविंदसिंह का व्यक्तित्त्व बहुआयामी है। वे मध्यकालीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना के प्रतीक थे। वे योद्धा, संत, राजनीतिज्ञ, कवि, प्रशासक सब कुछ थे।

गुरु गोविंदसिंह के रचित अनेक ग्रंथ बताए जाते हैं। इनकी रचनाओं का संग्रह 'दशम ग्रंथ' है। इसमें 16 रचनाएँ संकलित हैं। इन्होंने पंजाबी, फारसी और हिन्दी (ब्रजभाषा) में काव्यरचना की है। 'चंडी चरित्र' इनकी विशिष्ट काव्य रचना है। इसमें वीर रस प्रधान है। 'चौबीस अवतार' नामक रचना में शृंगार का पर्याप्त रंग दिखाई पड़ता है।

रीतिकाल की सामान्य प्रवृत्तियाँ

- रीतिकाल में अनेक प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। इस काल में भक्ति, नीति, वैराग्य, वीरता के अनेक अच्छे कवि हुए हैं।
- रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध काव्य प्रधानत: दरबारी काव्य है जबकि रीति मुक्त काव्य दरबारी काव्य नहीं है।
- रीतिकालीन दरबारी काव्य में शृंगारिकता की प्रधानता है।
- कवियों ने राधा-कृष्ण के नाम के सहारे आश्रयदाताओं की शृंगार लीलाओं का वर्णन किया है।
- इस काल में शृंगार की प्रधानता है लेकिन मुख्य साहित्यिक प्रवृत्ति रीति ही है।
- इस काल में रहीम, वृंद, गिरधर की नीतिपरक रचनाएँ बहुत लोकप्रिय रही हैं। वीर और भक्ति काव्य की भी कुछ रचनाएँ मिलती हैं।
- कवित्त, सवैया, दोहा और कुंडलियाँ - इस काल के बहु प्रयुक्त छंद हैं।
- इस काल की मुख्य भाषा ब्रजभाषा है।

आधुनिक काल (गद्यकाल-1850-)

किसी भी भाषा के साहित्य के साथ 'आधुनिक' शब्द का प्रयोग उस साहित्य की कई नवीन गतिविधियों की ओर संकेत करता है, जो उसे अपने पूर्वकालीन साहित्य से अलग करती हैं। इस संदर्भ में 'आधुनिक' शब्द केवल काल वाचक विशेषण मात्र न होकर साहित्य की नवीन भावभूमि, विचारबोध, नवीन प्रवृत्तियों एवं नवीन भाषा-शैली-स्वरूप आदि की ओर इंगित करता है। ई.स. 1850 के आसपास हिन्दी साहित्य में आनेवाली इसी परिवर्तनशीलता को आधुनिक की संज्ञा दी गई। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को **'गद्यकाल'** की संज्ञा दी, क्योंकि इस काल में आरंभ से ही गद्यात्मकता का प्रभाव-दबाव बढ़ता दिखाई देता है। पश्चिम के प्रभाव से गद्य की नई-नई विधाएँ-निबंध, नाटक, कहानी, उपन्यास, आलोचना, जीवनी, रेखाचित्र आदि उभर कर सामने आ रही थीं। रीतिकाल में पद्य की प्रधानता थी, जबकि आधुनिक काल में गद्य की प्रधानता देखने को मिलती है। इसीप्रकार रीतिकाल में ब्रजभाषा का प्राधान्य था, जबकि आधुनिक काल में खड़ीबोली साहित्यिक अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम बन गई, इसलिए आधुनिक काल को **खड़ी बोली का काल** कहा गया। रीतिकाल तक कविता में हृदय-पक्ष प्रधान था जबकि आधुनिककाल के साहित्य में बौद्धिक चेतना का महत्त्व बढ़ गया। रीतिकाल तक भक्ति एवं शृंगार की बहुलता रही जबकि आधुनिक काल में देशप्रेम, समाजसुधार जैसे विषयों का बोलबाल देखने को मिलता है। इसीलिए आधुनिक काल के आरंभिक साहित्य में पुनर्जागरण, राष्ट्रीय जागरण तथा समाज-सुधार की चर्चा केन्द्र में रही। इसप्रकार आधुनिक काल में हमें नवीन परिवर्तनों की लहर-सी देखने को मिलती है।

खड़ीबोली गद्य का प्रारंभिक स्वरूप : 19वीं शताब्दी के आरंभ में कोलकाता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना ने खड़ीबोली गद्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जॉन गिलक्राइस्ट ने हिन्दी और उर्दू दोनों में पुस्तकें तैयार करवाईं। उनका उद्देश्य इन पुस्तकों द्वारा गद्य का प्रचार-प्रसार करना था। इसके लिए चार विद्वान नियुक्त किए गए। लल्लूलाल, सदल मिश्र, सदा सुखलाल और इंशाअल्लाखाँ। इन्होंने क्रमश: प्रेमसागर, नासिकेतोपाख्यान, सुखसागर और रानी केतकी की कहानी की रचना की। इन रचनाओं का हिन्दी गद्य के प्रारंभिक विकास की दृष्टि से एक ऐतिहासिक महत्त्व है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के विचार से परवर्ती भाषा-साहित्य के मार्गदर्शन के लिए यह एक अच्छा उपक्रम था।

हिन्दी गद्य के आरंभिक विकास में अन्य कई प्रवृत्तियों ने भी महत्त्व की भूमिका अदा की। इसमें ईसाई मिशनरियों का धर्मप्रचार, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, शिक्षा-प्रचार के लिए लिखी गई पुस्तकें, समाज-सुधार की प्रवृत्तियाँ तथा कुछ पत्र-पत्रिकाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। गद्य के प्रचार-प्रसार में छापाखानो (प्रेस) ने भी अपनी भूमिका निभाई। अंग्रेज शासकों

ने शासन की सुविधा के लिए हिन्दी-उर्दू की शिक्षा उपलब्ध कराई। गद्य में पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ किया। राजाराम मोहनराय ने 'बंगदूत' नामक पत्र प्रारंभ किया। कानपुर से हिन्दी का पहला समाचार 'उदन्त मार्तण्ड' प्रकाशित हुआ। आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती का प्रसिद्ध ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' हिन्दी में लिखा गया। इसतरह विभिन्न शैक्षणिक, धार्मिक, सामाजिक प्रवृत्तियों के माध्यम से हिन्दी गद्य के विकास को एक निश्चित दिशा प्राप्त हुई। भारतेन्दु युग में इसका उत्कर्ष देखने को मिलता है।

आधुनिक काल : उपविभाजन की समस्या : आधुनिककाल के उपविभाजन की समस्या थोड़ी जटिल है। इस काल में गद्य और पद्य की नई-नई विधाओं और नवीन शैलियों का विकास हुआ। अत: इसके विभाजन में भिन्न-भिन्न दृष्टियाँ देखने को मिलती हैं। आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल को गद्य खंड और पद्य खंड जैसे दो वर्गों में बाँटकर उसके विकास को विभिन्न उत्थानों द्वारा स्पष्ट किया है। जबकि डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को केन्द्र मानकर उपविभाजन किया है, जो अधिक तार्किक है। उनके विचार से आधुनिक काल को तीन उपविभागों में बाँटा जा सकता है (1) पूर्व छायावाद युग (2) छायावाद (3) छायावादोत्तर युग। पूर्व छायावादी युग में क्रमश: 'पुनर्जागरण' और 'सुधार' की प्रवृत्ति प्रबल है, जिसके सूत्रधार क्रमश: भारतेन्दु और महावीरप्रसाद द्विवेदी रहे। छायावादोत्तर काल में प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नवलेखन के नये-नये स्वर उभर कर आते हैं, जिन्हें अलग-अलग दशकों में नए-नए नाम दिए गए।

कुछ इतिहासकारों ने आधुनिक गद्यसाहित्य का उपविभाजन विभिन्न विधाओं के आधार पर किया है। विभिन्न गद्य-विधाओं में किसी एक युगप्रवर्तक-प्रतिभासंपन्न रचनाकार को केन्द्र में रख कर उस विधा के विकास को रेखांकित किया गया है। जैसे कि कथासाहित्य (कहानी-उपन्यास) के क्षेत्र में प्रेमचंद, नाटक में जयशंकर प्रसाद, निबंध और समीक्षा में आचार्य रामचंद्र शुक्ल को केन्द्र में रखकर विभाजन किया गया है। कविता के विकास में छायावाद को केन्द्र में रखकर किया गया विभाजन बहुत सटीक है।

भारतेन्दु युग : (पुनर्जागरण काल - 1860-1900 ई.)

भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवेश द्वार है और स्वयं भारतेन्दु हरिशचंद्र नई चेतना और नये युग के प्रवर्तक हैं। इस युग की विभिन्न परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी थीं जिनके प्रभाव से साहित्य की दिशा और दशा बदल गई। स्वदेशप्रेम, स्वभाषा, स्वदेशी का आग्रह, नारी-शिक्षा एवं नारी-स्वातंत्र्य, अस्पृश्यता-निवारण जैसे विषय इस युग के साहित्य को परिचालित कर रहे थे। नई चेतना की इस अभिव्यक्ति को ही 'पुनर्जागरण' के नाम से पहचाना गया। भारतेन्दु इस नवीन चेतना के अग्रदूत बनकर सामने आए।

भारतेन्दु युगीन साहित्य : इस युग के साहित्य की प्रमुख भाषा खड़ीबोली है किंतु कविता में अभी भी ब्रजभाषा का प्रभाव बना हुआ था। निबंध, उपन्यास और कहानी जैसी नवीन गद्य-विधाओं का आरंभ इसी युग से होता है। पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाश भी यहीं से आरंभ होता है। व्यक्ति-व्यंजक निबंधों की परंपरा का आरंभ भारतेन्दु युग में हुआ। लाला श्रीनिवासदास रचित 'परीक्षागुरु' हिन्दी का पहला उपन्यास माना गया। देवकीनंदन खत्री के दो उपन्यास - 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुए। कहानी के विकास की दृष्टि से यह युग अल्प विकसित ही रहा। नाटक की दृष्टि से स्वयं भारतेन्दु ने बहुत अच्छे नाटक लिखकर अपने युग का प्रतिनिधित्व किया। भारतेन्दु की प्रेरणा से कई नवोदित रचनाकार सृजन के क्षेत्र में अग्रसर हुए।

भारतेन्दु युग के प्रमुख रचनाकार

भारतेन्दु हरिश्चंद्र इस युग के प्रणेता बनकर आए। उनका समय ई.स. 1850 से 1885 का रहा। अत्यंत अल्प आयु में ही उन्होंने साहित्य की बहुत बड़ी सेवा की। उनका साहित्यिक योगदान इस प्रकार है -

पत्रिकाएँ : कवि वचनसुधा, हरिश्चंद्र मेगजीन।

नाटक : वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली, भारत-दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी आदि।

भारतेन्दु ने मौलिक नाटकों के अलावा कई संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया। उन्होंने कविता, निबंध और आलोचना

के क्षेत्र में भी अपनी कलम चलाई। वैचारिक सोच की दृष्टि से भारतेन्दु साम्राज्यवाद के विरोधी थे, स्वराज के समर्थक थे। देश की विषम स्थितियों का यथार्थ चित्रण उनकी कृतियों में हुआ है। उनका 'अंधेर नगरी' नाटक तत्कालीन राज-व्यवस्था और समाज-व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य है।

भारतेन्दुयुग के अन्य रचनाकारों में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', ठाकुर जगमोहनसिंह, पं. राधाचरण गोस्वामी का योगदान उल्लेखनीय रहा। प्रतापनारायण मिश्र एवं बालकृष्ण भट्ट ने अच्छे निबंध लिखे तथा दोनों ने क्रमश: 'ब्राह्मण' तथा 'हिन्दी प्रदीप' पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया। प्रेमधन ने भी 'कादंबिनी' नामक पत्रिका निकाली।

द्विवेदीयुग : (जागरण-सुधारकाल - 1901 से 1919 ई.)

इस युग के प्रमुख चिंतक, सर्जक और मार्गदर्शक महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर इस कालखण्ड को द्विवेदीयुग कहा जाता है। उन्होंने 'सरस्वती' जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका का संपादन करते हुए हिन्दी भाषा और साहित्य को एक नई दिशा दी। उन्होंने भारतेन्दुयुगीन खड़ीबोली का परिमार्जन एवं परिष्कार करते हुए अपने युग के साहित्य में पूर्ण प्रतिष्ठा दिलाई। उन्होंने भारत-दुर्दशा के साथ-साथ स्वातंत्र्य-प्राप्ति की चेतना और बलिदान-भावना को जगाया। राष्ट्रीयता तथा मानवता जैसे मूल्यों की महिमा का गान इस युग की रचनाओं में मिलता है। इस युग के कवि नाथूराम शर्मा 'बलिदान गान' कविता में बलिदान के लिए आह्वान करते हुए कहते हैं :

'देश भक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा।
प्राणों का बलिदान, देश की वेदी पर करना होगा॥'

गुप्तजी के 'साकेत' के राम जन के सम्मुख धन को तुच्छ बदलाते हुए यहाँ जोड़ने नहीं बाँटने आये हैं। एक ओर आर्यों के आदर्श की स्थापना और दूसरी ओर धरती को स्वर्ग बनाने की मंगलकामना उनमें दिखाई देती है। वे कहते हैं कि -

'संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।'
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

द्विवेदीयुग का सर्वाधिक महत्त्व कविता को लेकर है। कविता में खड़ी बोली की पूर्ण प्रतिष्ठा इस युग की सबसे बड़ी देन है। इस युग की कविता में युग-जीवन के चित्रण के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के प्रति आदर भाव की अभिव्यक्ति है। पौराणिक आख्यानों एवं चरित्रों को लेकर अनेक प्रबंध काव्य इस युग में लिखे गए। इस युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने छोटे-बड़े अनेक प्रबंध काव्य लिखे। राष्ट्रकवि के रूप में स्वीकृत गुप्तजी गाँधीवादी मूल्यों से अनुप्राणित दिखाई देते हैं। उनकी रचना 'भारत भारती' में राष्ट्रीय चेतना की चरम अभिव्यक्ति हुई है। 'साकेत' जैसे महत्त्वपूर्ण महाकाव्य के अलावा उन्होंने यशोधरा, रंग में भंग, किसान, पंचवटी, द्वापर, जयद्रथ वध और विष्णुप्रिया जैसे प्रबंध काव्यों की रचना की। भारतीय साहित्य में उपेक्षित नारी चरित्रों को उन्होंने सच्ची संवेदना के साथ एक नए क्लेवर में प्रस्तुत किया।

गुप्तजी के अलावा द्विवेदीयुग में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'प्रिय प्रवास' एवं 'वैदेही वनवास' जैसी उत्कृष्ट प्रबंध रचनाएँ लिखीं। जगन्नाथदास रत्नाकर का 'उद्धव शतक' इसी युग की ब्रज-भाषा में रचित उत्तम रचना है। रामनरेश त्रिपाठी भी इस युग के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। इतिवृत्तात्मकता और वर्णन प्रधानता इस युग की कविता की अपनी सीमा रही, जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद का जन्म हुआ।

निबंध-लेखन की दृष्टि से द्विवेदी युग का महत्त्वपूर्ण प्रदान रहा। स्वयं महावीरप्रसाद द्विवेदी के अलावा बालमुकुन्द गुप्त, अध्यापक पूर्णसिंह, पं. माधवप्रसाद मिश्र, बाबू श्यामसुंदरदास जैसे निबंधकारों ने उत्कृष्ट निबंध लिखे। बालमुकुन्द गुप्त का 'शिवशंभू का चिट्ठा' में संकलित व्यक्तिप्रधान निबंध बहुचर्चित रहे। अध्यापक पूर्णसिंह के निबंध आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम तथा सच्चीवीरता जैसे निबंधों की काफी चर्चा रही।

उपन्यास की दृष्टि से द्विवेदीयुग एक तरह से पूर्वप्रेमचंदयुग कहा जा सकता है। पं. किशोरीलाल गोस्वामी ने लगभग

पैंसठ उपन्यास लिखे। बाबू गोपालदास गहमरी ने जासूसी उपन्यासों की रचना की। लेकिन इन उपन्यासों में उपन्यासकला की परिपक्वता के दर्शन नहीं होते। उपन्यास विधा के लिए यह बाल्य-काल ही था। इस काल में बंगला एवं मराठी उपन्यासों के अनुवाद भी किए गए। **कहानी** के विकास की दृष्टि से भी इसे प्रारंभिक काल ही कहा जा सकता है। पं. किशोरीलाल गोस्वामी लिखित 'इन्दुमती' कहानी इसी युग में प्रकाशित हुई। 'दुलाईवाली' और 'ग्यारह वर्ष का समय' जैसी कहानियों के बाद प्रसाद की 'ग्राम' कहानी इस युग की एक महत्त्वपूर्ण कहानी मानी गई। सन् 1915 में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी 'उसने कहा था' सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई, जो भाव और कला दोनों दृष्टियों से द्विवेदीयुग की सर्वश्रेष्ठ कहानी के रूप में प्रतिष्ठित हुई।

नाटक की दृष्टि से यह युग अनुवादों का युग रहा। कोई उत्कृष्ट मौलिक नाटक नहीं लिखा गया। संस्कृत, अंग्रेजी और बँगला नाटकों के अच्छे अनुवाद हुए। इनमें कालिदास और शेक्सपियर के नाट्यानुवाद उल्लेखनीय हैं। आलोचना के क्षेत्र में भी शुरुआत मात्र हुई। आलोचना गुण-दोष-विवेचन तक सीमित रही। समीक्षा निबंध-लेखन के रूप में आगे बढ़ रही थी। रामचंद्र शुक्ल का लेखन-कार्य इस युग के अंत में आरंभ हुआ था। कुल मिलाकर द्विवेदीयुग ने आने वाले युग के लिए एक सकारात्मक भूमिका बाँधने का कार्य किया।

छायावाद युग : (1920-1935 ई.)

द्विवेदीयुग के समाप्त होते-होते सन् 1918-20 के आसपास हिन्दी में एक नवीन काव्यधारा जन्म लेने लगी थी, जिसे छायावाद के नाम से पहचाना गया। 'छायावाद' संज्ञा का सर्वप्रथम प्रयोग 'शारदा' एवं 'सरस्वती' नामक पत्रिकाओं में मिलता है। छायावाद को परिभाषित करने का प्रयोग कई विद्वानों ने किया किन्तु कोई भी परिभाषा अपने आप में पूर्ण नहीं थी। डॉ. नगेन्द्र ने छायावाद को 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा है। डॉ. रामकुमार वर्मा आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने और परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने की स्थिति को छायावाद कहते हैं। किसी-किसी ने प्रकृति के मानवीकरण को छायावाद कहा। हकीकत यह है कि द्विवेदीयुगीन कविता अपने सुधारवादी दृष्टिकोण के कारण स्थूल, इतिवृत्तात्मक और आवश्यकता से अधिक बहिर्मुखी थी। जबकि छायावादी कवि अंतर्मुखी था। अत: स्थूलता की जगह सूक्ष्मता और इतिवृत्तात्मकता के बदले सांकेतिकता-व्यंजनात्मकता छायावादी कविता में दिखलाई दी। अधिकांश लोगों ने छायावाद का प्रवर्तक प्रसादजी को स्वीकार किया।

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

- वैयक्तिकता अर्थात् वैयक्तिक सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद की मार्मिक अभिव्यंजना छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति है। द्विवेदी युगीन सामाजिकता की प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद वैयक्तिक चेतना को अग्रिमता देता है।
- प्रेम और सौंदर्य को लेकर एक नवीन सूक्ष्म दृष्टि छायावादी कविता में देखने को मिलती है। स्थूल एवं बाह्य सौंदर्य के स्थान पर सूक्ष्म तथा भीतरी सौंदर्य का प्रतीकात्मक-बिम्बात्मक चित्रण इस कविता की विशेषता है।
- प्रकृति का मानवीकरण छायावाद की विशिष्ट पहचान है। प्रकृति के विविधरंगी चित्र छायावादी कविता की धरोहर है। प्रकृति में मानवीय भावों का आरोपण, विशेष रूप से नारी-सौंदर्य, नारी के मनोभावों का सजीव आरोपण छायावादी कविता को एक नई पहचान देता है।
- नारी के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण छायावाद में देखने को मिलता है। नारी मात्र वासना-पूर्ति का साधन न होकर सहचरी, प्रेयसी, जननी, देवी आदि अनेक रूपों में आई है। जूही की कली, संध्या सुंदरी, बीती विभावरी, वसंतरजनी जैसी कविताएँ इसका प्रमाण हैं। प्रसादजी ने 'कामायनी' में श्रद्धा के माध्यम से नारी के बड़े ही गरिमामय रूप का चित्रण किया है।
- प्रकृति में किसी अज्ञात सत्ता की अनुभूति छायावादी कवि को रहस्यवाद की ओर ले जाती है। चराचर जगत का दृष्टा, नियंता कौन है ? यह प्रश्न कवि को किसी अलौकिक शक्ति के बारे में सोचने को प्रेरित करता है। महादेवी वर्मा की कविता में अज्ञात-प्रियतम का उल्लेख इसी बात का सूचक है।

- यथार्थ से पलायन की वृत्ति भी छायावादी कविता में कहीं-कहीं दिखाई देती है। छायावादी कवि कल्पना-लोक में विहार करता मालूम पड़ता है।
- भाषा एवं अभिव्यक्ति की नई-नई शैलियों का प्रयोग इस युग की कविता में हुआ है। छन्द के बंधन तोड़कर छन्द-मुक्त एवं मुक्त-छंद कविता लिखी गई। भावानुभूति की लयात्मक अभिव्यक्ति के लिए गीतिशैली का भरपूर प्रयोग हुआ। प्रतीक, बिम्ब एवं मानवीकरण जैसे अलंकारों का प्रयोग छायावादी कविता को एक नई साज-सज्जा प्रदान करता है।

छायावाद के प्रमुख कवि

छायावाद के प्रमुख आधार-स्तंभ हैं-प्रसाद, निराला, पंत एवम् महादेवी।

जयशंकरप्रसाद (1889-1937 ई.) : प्रसादजी को छायावाद का प्रवर्तक एवं प्रमुख आधार-स्तंभ माना जाता है। वे बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। इतिहास, संस्कृति और दर्शन का उन्हें अच्छा ज्ञान था। 'कामायनी' उनकी काव्य-प्रतिभा का चरम विकसित पुष्प है। 'कामायनी' को छायावाद का उपनिषद कहा जाता है। 'आँसू' में बौद्ध दर्शन के दु:खवाद का प्रभाव है। आँसू कवि की घनीभूत पीड़ा की अश्रुमयी अभिव्यक्ति का काव्य है। प्रेमपथिक, चित्राधार, लहर, झरना आदि उनकी अन्य कृतियाँ हैं।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (1897-1961 ई.) : काव्य का देवता 'निराला' तथा 'महाप्राण निराला' जैसी संज्ञाओं से विभूषित निराला ओज, औदात्य एवं विद्रोह के कवि हैं। उन्हें मुक्तछंद के प्रणेता के रूप में जाना जाता है। उनकी कविता में प्रेम, प्रकृति और प्रगति तीनों का समन्वय है। उनकी कविता उनके संघर्षशील व्यक्तित्व का परिचय कराती है। 'तुलसीदास' उनकी प्रबंध रचना है तथा 'सरोजस्मृति' एवं 'राम की शक्तिपूजा' लम्बी कविताएँ हैं। अनामिका, परिमल, गीतिका, बेला, नये पत्ते तथा कुकुरमुत्ता आदि अन्य काव्य-संग्रह हैं। छायावाद में रहकर छायावाद का अतिक्रमण कर प्रगतिशीलता एवं प्रयोगशीलता का परिचय कराने वाले वे एक मात्र छायावादी कवि हैं।

सुमित्रानंदन पंत (1900-1977 ई.) : प्रकृति के चतुर चितेरे और सुकुमारता के कवि पंतजी का प्रकृतिप्रेम उनके जन्म स्थान कौसानी (अल्मोड़ा) की उपज है। उनकी काव्य यात्रा का प्रारंभ प्रकृतिप्रेम से होता है किंतु क्रमश: मानवीय प्रेम और आध्यात्म की ओर अग्रसर हो जाते हैं। उनकी कविता पर गांधीवाद, मानवतावाद और अरविंद दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है। पल्लव, वीणा, गुंजन, ग्रंथि उनके प्रकृतिप्रेम की रचनाएँ हैं, युगांत, युगवाणी और ग्राम्य में युग-जीवन का यथार्थ है, स्वर्ण धूलि और स्वर्णकिरण में आध्यात्म की छाया है। 'लोकायतन' एवं 'चिदंबरा' को क्रमश: साहित्य अकादमी और ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुए।

महादेवी वर्मा (1907-1987 ई.) : छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा आधुनिक काल की मीराँ के नाम से भी जानी जाती हैं। मधुमय पीड़ा और करुणा इनकी कविता का प्राणतत्व है। उनकी कविता में छायावाद और रहस्यवाद दोनों घुलमिल गए हैं। किसी अज्ञात प्रियतम के प्रति समर्पण भाव उनकी कविता को एक अलग पहचान देता है। 'तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुममें ढूँढूंगी पीड़ा', 'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल, प्रियतम का पथ आलोकित कर' जैसी पंक्तियाँ में विरह की वेदना और अज्ञात प्रियतम के प्रति समर्पण-भाव-दोनों की अभिव्यक्ति हुई है। गीति तत्त्व उनकी कविता की लाक्षणिकता है। नीहार, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। 'यामा' के लिए उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ था।

छायावाद की उम्र बहुत लम्बी नहीं रही। उसका अंत भी विशिष्ट परिस्थितियों में हुआ। निराला ने छायावाद का अतिक्रमण कर नई भावभूमि पर संचरण किया तथा पंतजी ने 'युगांत' के रूप में युग के अंत की घोषणा कर दी।

छायावादोत्तर काल में कविता में दो अलग-अलग प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं। छायावादी कविता में व्यक्त वैयक्तिकता उसके बाद की कविता में स्वच्छंदतावादी रोमानी दृष्टि को लेकर एक नवीन कलेवर के साथ उभर कर आई जिसे **हालावाद** कहा गया। इस दौर की कुछ रचनाओं में एक ओर रूढ़ियों और अंधविश्वासों का विरोध, संकीर्णताओं के प्रति आक्रोश का भाव था, तो दूसरी ओर वैयक्तिक सुख, उल्लास, आनंद अर्थात् जीवन की मस्ती की अभिव्यक्ति थी। हाला, मधुशाला, साकी

जैसे प्रतीकों के माध्यम से बच्चनजी ने हालावादी कविता का सृजन किया। हालावाद का जन्म और अंत दोनों हरिवंशराय बच्चन की कविता में देखा जा सकता है।

छायावादोत्तर काल में ही हालावादी काव्य-धारा के समान्तर ही एक दूसरी काव्य-धारा भी चल रही थी, जिसे **राष्ट्रीय-सांस्कृतिक** काव्य धारा कहा गया। इसके अंतर्गत एक ओर पराधीनता से राष्ट्र की मुक्ति का आह्वान था तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति का गौरव-गान था। ऐसे कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', नरेन्द्र शर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान तथा रामधारीसिंह 'दिनकर' आदि प्रमुख थे। इनमें दिनकरजी राष्ट्रीयता और पौरुष के कवि के रूप में सामने आए। अन्याय और शोषण के विरुद्ध हुंकार उनकी कविता की पहचान है। कुरुक्षेत्र, रेणुका, हुंकार, रश्मिरथी, उर्वशी आदि उनकी मुख्य रचनाएँ हैं।

प्रगतिवादी काव्य धारा : (1936-1942 ई.)

द्विवेदीयुग की प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद और छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद का जन्म हुआ। छायावादी अंतर्मुखी चेतना के विरुद्ध मार्क्सवादी चिंतन से अनुप्राणित सामाजिक चेतना के साथ 1936 के आसपास जिस काव्य-प्रवृत्ति का जन्म हुआ उसे प्रगतिवाद कहा गया। प्रगतिवाद किसी भी प्रकार के वर्ग-भेद को दूर कर कृषकों, श्रमिकों, पिछड़ों के उत्कर्ष की कामना से प्रेरित है। अत: उसमें पूँजीवाद, सामंतवाद और साम्राज्यवाद के प्रति गहरा आक्रोश है। समाज के सर्वहारा वर्ग के प्रति गहरी संवेदनशीलता इस धारा के कवियों में दिखाई देती है। इस काव्य धारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं - शोषण का विरोध, शोषित का समर्थन, सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति, साहित्य को जीवन की दृष्टि से देखना, स्त्री-बच्चों की सामाजिक शोषण से मुक्ति, ईश्वर के बदले मानवीय संघर्ष में आस्था आदि। प्रगतिवादी कवियों ने साहित्य को कल्पना के शिखर से उतारकर यथार्थ की ठोस धरती पर लाकर रख दिया। इन कवियों की भाषा और शिल्प भी छायावाद से एकदम भिन्न है। इनके शब्द, प्रतीक, बिम्ब, मुहावरे आदि सब कुछ जन-जीवन से जुड़े हैं। छायावादी कवियों में से पंत एवं निराला में प्रगतिशील चेतना देखने को मिलती है। पंतजी की ताज, युगांत, युगवाणी, ग्राम्य जैसी रचनाएँ तथा निराला की भिक्षुक, विधवा, तोड़ती पत्थर तथा कुकुरमुत्ता में इसी चेतना की अभिव्यक्ति है। प्रमुख प्रगतिवादी कवियों में रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन त्रिलोचन, शिवमंगलसिंह सुमन, भारतभूषण अग्रवाल तथा मुक्तिबोध उल्लेखनीय हैं।

प्रयोगवादी काव्य धारा (1943-1953 ई.)

सन् 1943 में अज्ञेयजी द्वारा संपादित 'तारसप्तक' के प्रकाशन के साथ ही प्रयोगवादी कविता का दौर शुरू हुआ। नए सात कवियों के समावेश के कारण इसे 'सप्तक' की संज्ञा दी गई। बाद में क्रमश: दूसरा, तीसरा और चौथा सप्तक का प्रकाशन हुआ। प्रयोगवाद शब्द को लेकर हुए विवाद का उत्तर देते हुए अज्ञेय ने प्रयोग को साधन बताया, साध्य नहीं। संकलित कवि नए थे और नई-नई राहों के अन्वेषी। नए भाव बोध, नवीन संवेदनाएँ तथा नए-नए शिल्पगत प्रयोगों के कारण इन्हें प्रयोगवादी कहा गया। प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इसप्रकार हैं - घोर व्यक्तिवादिता एवं परंपरा के प्रति विद्रोह का स्वर, मध्यमवर्ग की अनास्था, कुंठा, जड़ता और जीवन-संघर्ष का बौद्धिक चित्रण, दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति, लघुमानव की प्रतिष्ठा आदि। शिल्पगत प्रवृत्तियों में कविता के पुराने औजारों-काव्य-भाषा एवं शिल्प का विरोध, नए प्रतीक, नए बिम्ब, नए उपमान आदि का प्रयोग। पुराने उपमानों के मैले हो जाने की घोषणा स्वयं अज्ञेय ने की थी। अज्ञेय, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, शमशेर, कुँवर नारायण, गिरिजाकुमार माथुर आदि प्रमुख प्रयोगशील कवि हैं। आगे चलकर प्रयोगवाद का पर्यवसान 'नई कविता' के रूप में हो गया।

नई कविता : (1954-1962 ई.)

ई. सन् 1954 के आसपास प्रयोगवाद का रूपांतर 'नई कविता' के रूप में हो गया। 'नये पत्ते' और 'नयी कविता' नामक पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ 'नई कविता' नाम काव्यजगत में चर्चित होने लगा था। इस काव्यधारा की भावभूमि एवं शिल्प दोनों प्रयोगवादी कविता से भिन्न थे। नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इसप्रकार थीं - जीवन के प्रति आस्था, कथ्य की व्यापकता

एवं सृजन की उन्मुक्तता, अनुभूति की सच्चाई-ईमानदारी, शहरी और ग्रामीण दोनों परिवेश से संबंध, बदले हुए जीवनमूल्यों की यथार्थ अभिव्यक्ति, मानव-मुक्ति, लोकसंस्कृति के प्रति प्रेम आदि। नये-नये अनुभवों के दबाव से नये काव्य रूपों तथा काव्य-शिल्प की तलाश नई कविता की एक नई परंपरा सामने आई। संशय की एक रात, एक कंठ विषपायी तथा अंधायुग जैसी रचनाएँ इस दौर में लिखी गईं। अज्ञेय, मुक्तिबोध, शमशेर, धर्मवीर भारती, भवानीप्रसाद मिश्र, नरेश मेहता आदि इस दौर के प्रमुख रचनाकार हैं।

साठोत्तरी कविता : (1962-1980 ई.)

1962 से 1980 का दौर साठोत्तरी कविता का दौर है। इस दौर में कविता के नाम पर अनेक नारे और आंदोलन सामने आए, जिसके कारण अस्वीकृति का तेवर पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। इसमें परंपरा का विरोध था। अकविता, अस्वीकृत कविता, भूखी पीढ़ी की कविता, क्रुद्ध पीढ़ी की कविता जैसे नये-नये नाम आए भी गए भी। इन सबके समान्तर एक स्वर सबसे अलग था - वह था **समकालीन कविता** का, जिसमें परंपरा के साथ आधुनिकता का भी स्वीकार है। वास्तव में सन् साठ के बाद की आजतक की कविता समकालीन कविता है, जिसमें कम से कम तीन-चार पीढ़ियों के उन सभी कवियों की सक्रिय उपस्थिति है, जिनमें युगीन चेतना की प्रामाणिक अभिव्यक्ति है। इस दौर की कविता में छायावादोत्तर कविता की सभी प्रमुख प्रवृत्तियों का पर्यवसान होता दिखाई देता है। नवगीत-लेखन भी इस दौरान चलता रहा। इस दौर के प्रमुख कवियों की सूची लम्बी है, जिसमें अज्ञेय, शमशेर, मुक्तिबोध, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, नरेश मेहता, भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, धूमिल, दुष्यंतकुमार, केदारनाथ सिंह आदि और आठवें दशक एवं उसके बाद के कवियों में लीलाधर जगूड़ी, वेणुगोपाल, राजेश जोशी, उदयप्रकाश, मंगलेश डबराल, असद जैदी, अरुण कमल, स्वप्निल आदि का समावेश होता है। मदन कश्यप, नीलेश रघुवंशी जैसे कई कवि इन दिनों काव्य-लेखन में सक्रिय हैं। समकालीन कविता में प्रतिबद्ध कविता एवं जनवादी कविता का भी समावेश होता है। वस्तुत: समकालीन कविता ही आज की कविता है।

हिन्दी गद्य (1920 से 1947) पूर्व स्वातंत्र्य युग

हिन्दी गद्य के विकास की दृष्टि से भारतेन्दु युग एवं द्विवेदी युग को आरंभिक विकास का काल कहा जाएगा। हिन्दी गद्य की विभिन्न विधाओं का बहुमुखी विकास उत्तर द्विवेदी युग में ही हुआ। पश्चिमी एवं बंगला भाषाओं के साहित्य के प्रभाव के गद्य की नई-नई विधाओं का विकास हिन्दी में हुआ।

उपन्यास के क्षेत्र में प्रेमचंद का आगमन एक क्रांतिकारी घटना सिद्ध हुई। उन्होंने उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र बताते हुए उसे युग-जीवन की समस्याओं की यथार्थ अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। उपन्यास और कहानी दोनों विधाओं में नये प्रतिमान स्थापित कर वे कथा-सम्राट कहलाए। 1918 से 1936 के बीच उन्होंने सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, निर्मला, गबन और गोदान जैसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखे। 'गोदान' उनकी उपन्यास-कला की पूर्णिमा कहा गया। 'गोदान' प्रेमचंद और प्रेमचंदोत्तर युग को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में देखा गया। प्रेमचंद ने देश की समस्याओं के समाधान के लिए दिशा-निर्देश भी दिए। वे सचमुच कलम के सिपाही सिद्ध हुए।

प्रेमचंद युग के अन्य उपन्यासकारों में वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास-गढ़कुंडार, विराटा की पद्मिनी, झांसी की रानी, मृगनयनी, यशपाल के उपन्यास दादा कामरेड, पार्टी कामरेड, दिव्या, अमिता, झूठासच, उनके मार्क्सवादी दर्शन के कारण एक अलग पहचान रखते हैं। हजारीप्रसाद द्विवेदी बाणभट्ट की आत्मकथा, पुनर्नवा, चारु चंदालेख के कारण विशेष महत्त्व रखते हैं। इसी दौर में भगवतीचरण वर्मा ने चित्रलेखा की रचना की। जैनेन्द्रकुमार ने मनोविश्लेषवादी दृष्टिकोण को लेकर त्यागपत्र, सुनीता, सुखदा आदि उपन्यास लिखे। इलाचंद्र जोशी में भी मनोवैज्ञानिकता के दर्शन होते हैं। अज्ञेयजी एक अलग अनुभव-विश्व के साथ 'शेखर : एक जीवनी' जैसे उपन्यास की रचना करते हैं। अश्कजी के उपन्यासों में गर्मराख और गिरती दीवारें महत्त्वपूर्ण हैं।

कहानी के क्षेत्र में भी प्रेमचंद का दबदबा रहा। उनकी तीन सौ से भी अधिक कहानियों में विषय एवं शैली की पर्याप्त

विविधता है। ईदगाह, कफन, पूस की रात, पंचपरमेश्वर, शतरंज के खिलाड़ी उनकी प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। प्रेमचंद के ही समकालीन होते हुए भी प्रसादजी ने अलग राह चुनी। उनकी कहानियों में प्रेम भावुकता तथा द्वन्द्व का तत्त्वप्रधान रहा। पुरस्कार, आकाशदीप, छोटा जादूगर उनकी चर्चित कहानियाँ हैं। प्रेमचंद युग के अन्य कहानीकारों में कौशिक 'ताई', सुदर्शन 'हार की जीत' जैसी कहानियों के कारण प्रसिद्ध हुए। बाद में जैनेन्द्र, अश्क, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, उग्र आदि कहानीकारों ने कहानी को कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से अपने-अपने नजरिए से आगे बढ़ाया।

नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद ने हिन्दी नाटक को एक नई दिशा, नया धरातल और नई गरिमा प्रदान की। उनके नाम से, अर्थात् प्रसाद युग के नाम से इस काल को पहचाना गया। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य नाट्यतत्त्वों का समन्वय करते हुए अजातशत्रु, चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे उत्कृष्ट ऐतिहासिक नाटक लिखे। प्रसादजी की भाँति हरिकृष्ण प्रेमी ने कई अच्छे ऐतिहासिक नाटक लिखे। प्रसाद युग में ही प्रसादजी के परंपरा से अलग हटकर लक्ष्मीनारायण मिश्र ने कई समस्या नाटक लिखे।

निबंध की दृष्टि से यह युग चरम विकास का काल रहा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चिंतामणि भाग 1/2 के अंतर्गत गंभीर, विचारपरक निबंध लिखे। उनके निबंधों में विषय के साथ व्यक्तित्त्व का पुट भी देखने मिलता है। उनके मनोविकार संबंधी निबंध बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। द्विवेदीजी ने इसी युग में निबंध-लेखन आरंभ कर दिया था लेकिन उनके निबंध ललित-निबंध की परंपरा में आते हैं। अशोक के फूल, कुटज, देवदारु उनके श्रेष्ठ ललित निबंध हैं।

आलोचना की दृष्टि से यह काल युगांतर का काल सिद्ध हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का आर्यभाव एक क्रांतिकारी घटना सिद्ध हुआ। वे हिन्दी के सर्वाधिक सक्षम एवं विश्वसनीय आलोचक थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रामाणिक एवं शास्त्रीय इतिहास लिखा। उनके कई निबंध गंभीर आलोचना के उत्तम उदाहरण हैं। जायसी एवं सूर-तुलसी की कविता को लेकर उनकी रसवादी आलोचना दृष्टि महत्त्वपूर्ण मानी गई। इसी दौरान हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' एवं 'कबीर' जैसे ग्रंथ लिखकर शुक्लजी की आलोचना-परंपरा को आगे बढ़ाया। डॉ. नगेन्द्र और पं. विश्वनाथप्रसाद मिश्र भी उच्च कोटि के आलोचक थे। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद मार्क्सवादी आलोचना का उदय हुआ, जिसमें शिवदानसिंह चौहान और रामविलास शर्मा का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी गद्य साहित्य

स्वातंत्र्योत्तर गद्य साहित्य में भी कविता की तरह बहुआयामी विकास हुआ। स्वतंत्र देश की विभिन्न परिस्थितियों ने साहित्य को प्रभावित किया। मार्क्सवाद, गाँधीवाद, अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषणवाद आदि ने पद्य एवं गद्य दोनों को प्रभावित किया।

उपन्यास का विकास नई-नई प्रवृत्तियों एवं शैलियों को लेकर हुआ। फणीश्वरनाथ रेणु ने अंचल-विशेष को केन्द्र में रखकर आँचलिक उपन्यास का प्रवर्तन किया। 'मैला आँचल' रेणु-रचित हिन्दी का पहला आँचलिक उपन्यास है। नागार्जुन, भैरवनाथ गुप्त आदि ने भी आँचलिक उपन्यास लिखे। महानगरीय परिवेश एवं मध्यम वर्ग की मानसिकता से संबंधित उपन्यास भी लिखे गये। ऐसे उपन्यासकारों में मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', राजेन्द्र यादव का 'उखड़े हुए लोग' मुख्य हैं। फ्रायड से प्रभावित लेखकों में जैनेन्द्र एवं इलाचंद्र जोशी उल्लेखनीय हैं। अज्ञेयजी ने शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप तथा अपने-अपने अजनबी जैसे उपन्यास लिखकर नये प्रतिमान प्रस्तुत किए।

ऐतिहासिक उपन्यासों में हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों के अतिरिक्त अमृतलाल नागर का 'मानस का हंस' उल्लेखनीय है। यशपाल का 'झूठा सच', भीष्म साहनी का 'तमस' तथा कमलेश्वर के कई उपन्यास इसी काल में लिखे गए। महिला कथाकारों में मन्नू भंडारी, उषा प्रिवंदा, कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, ममता कालिया निरंतर लिखती रहीं। श्रीलाल शुक्ल-रचित 'राग दरबारी', मनोहरश्याम जोशी का 'कुरुकुरु स्वाहा' चर्चित उपन्यास रहे। कथ्य का वैविध्य एवं शिल्पगत प्रयोग इधर के उपन्यासों की विशेषता है। धर्मवीर भारती का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' प्रयोगशील उपन्यास माना गया।

कहानी के विकास की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युग में कथ्य एवं शिल्प दोनों में नवीनता और विविधता देखने को मिलती है। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद गाँव, शहरों और मूल्यों में जो परिवर्तन आया उसका प्रभाव हिन्दी कहानी पर पड़ा। एक ओर ग्राम-चेतना से संबद्ध आँचलिक कहानियाँ लिखी गईं तो दूसरी ओर महानगरी जीवन से जुड़ा यथार्थ का चित्रण होने लगा। रेणु ने ठेस, पंचलाइट, रसपिरिया, तीसरी कसम जैसी श्रेष्ठ कहानियाँ लिखीं। नई कहानी आंदोलन के रूप में मोहन राकेश, कमलेश्वर तथा राजेन्द्र यादव ने नगर-जीवन के अनुभवों की कहानियाँ लिखीं। डॉ. नामवरसिंह ने निर्मल वर्मा को नई कहानी का पहला कहानीकार और 'परिंदे' को पहली नई कहानी घोषित किया। संवेदना की सूक्ष्मता और भाषा की कोमलता उनकी कहानियों को एक अलग पहचान देती है। अन्य कहानीकारों में भीष्म साहनी, यशपाल, जैनेन्द्र, विष्णु प्रभाकर, अज्ञेय आदि आते हैं। महिला कथाकारों में मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, कृष्णा सोबती, मालती जोशी, मृदुला गर्ग आदि मुख्य हैं।

सातवें-आठवें दशक के कहानीकारों में ज्ञानरंजन, अमरकांत, काशीनाथ सिंह, असगर वजाहत, उदयप्रकाश आदि अनेक कहानीकारों के नाम लिए जा सकते हैं। इनमें से कई कहानियाँ मोहभंग की कहानियाँ हैं। इन कहानियों में आम आदमी की नियति का चित्रण भी हुआ है। सामाजिक बदलाव का स्वर भी इन कहानियों में सुनाई पड़ता है। दलित चेतना की कहानियाँ भी लिखी जा रही हैं।

नाटक एवं एकांकी

प्रसादोत्तर युग में नाटक का विकास रंगमंच को केन्द्र में रख कर हुआ। लोकनाट्य एवं लोकमंच का भी भरपूर सहारा लिया गया। स्वातंत्र्योत्तर युग में लक्ष्मीनारायण मिश्र, उदयशंकर भट्ट, अश्कजी, जगदीशचंद्र माथुर आदि ने नाटक एवं एकांकी दोनों की रचना की। अश्कजी का 'अंजोदीदी' और माथुरजी का 'कोणार्क' बहुचर्चित नाटक रहे। गीतिनाट्य की दृष्टि से धर्मवीर भारती का 'अंधायुग' तथा दुष्यंत का 'एक कंठ विषपायी' सर्वश्रेष्ठ नाटक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। नाटक के क्षेत्र में मोहनराकेश का आगमन एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उन्होंने नाटक और रंगमंच के क्षेत्र में दिशा-परिवर्तन का काम किया। आषाढ़ का एक दिन, लहरों के राजहंस और आधे अधूरे जैसे कालजयी नाटक उन्होंने लिखे। उनके बाद रंगमंच और नाट्य भाषा को लेकर कई प्रयोग हुए। लक्ष्मीनारायणलाल, सुरेन्द्र वर्मा, सर्वेश्वर, मुद्राराक्षस, भीष्म साहनी आदि अनेक नाटककारों ने नये-नये प्रयोग किए। 'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण' (सुरेन्द्र वर्मा), 'बकरी' (सर्वेश्वर), 'हानूश' (भीष्म सहानी) आदि महत्त्वपूर्ण नाटक हैं। बंगला एवं मराठी रंगमंच, एन. एस. डी., आइ. एन. टी. जैसी नाट्य-संस्थाओं ने नाटक और मंच के विकास को प्रोत्साहित किया। नाटक के साथ-साथ एकांकी का भी समानान्तर विकास हुआ। जगदीशचंद्र माथुर, अश्क, सेठ गोविददास, रामकुमार वर्मा के एकांकी चर्चा के केन्द्र में रहे।

निबंध को समृद्ध करने का कार्य शुक्लजी एवं हजारीप्रसाद द्विवेदीजी ने किया। द्विवेदीजी ने ललिति निबंध लिखकर भाषा की सृजनात्मकता को नये आयाम दिए। विद्यानिवास मिश्र भी इसी परंपरा में आगे बढ़े और उन्होंने अनेक ललित निबंध लिखे। प्रकृति और संस्कृति का रसात्मक सामंजस्य द्विवेदीजी और मिश्रजी दोनों के निबंधों में हुआ है। अज्ञेय, जैनेन्द्र, रामवृक्ष बेनीपुरी ने भी इस क्षेत्र में अच्छा योगदान किया। राहुल सांकृत्यायन, धर्मवीर भारती, कुबेरनाथ राय ने भी इस विधा को समृद्ध किया। हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य के माध्यम से निबंध को एक नया कलेवर प्रदान करते हुए सामजिक-राजनीतिक यथार्थ से जोड़ दिया। उन्होंने व्यंग्य को स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में स्वीकार किया। इस तरह निबंध में विषय का दायरा बढ़ता गया और भाषा के नये-नये तेवर देखने को मिले।

आलोचना (समीक्षा) की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर युग में हजारीप्रसाद द्विवेदी, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र इस प्रवृत्ति में निरंतर सक्रिय रहे। वाजपेयीजी ने छायावाद की सकारात्मक समीक्षा की। इस युग में व्यक्तिवादी (सौंदर्यवादी या रूपवादी) आलोचना एवं प्रगतिशील आलोचना का साथ-साथ विकास हुआ। अज्ञेय, धर्मवीर भारती, रामस्वरूप चतुर्वेदी, विजयदेव नारायण साही रूपवादी आलोचक हैं। प्रगतिशील (मार्क्सवादी) आलोचकों में रामविलास शर्मा का योगदान सबसे बड़ा है। उन्होंने भारतेन्दु, प्रेमचंद, निराला आदि की इसी नजरिए से विद्वतापूर्वक आलोचना की। डॉ. नामवरसिंह भी प्रगतिशील आलोचकों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने समकालीन साहित्य को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। छायावाद, कहानी :

नई कहानी, कविता के नये प्रतिमान, दूसरी परंपरा की खोज, इतिहास और आलोचना उनके महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। मुक्तिबोध ने 'कामायनी : एक पुनर्विचार' जैसा गंभीर आलोचनात्मक ग्रंथ लिखा। शिवकुमार मिश्र, परमानंद श्रीवास्तव का भी विशिष्ट योगदान रहा। हिन्दी आलोचना में शैली विज्ञान और संरचनावाद का प्रभाव भी देखने को मिलता है।

उपर्युक्त गद्य विधाओं के साथ-साथ आत्मकथा, जीवनी, रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रावृत्तांत आदि विधाओं का भी स्वातंत्र्योत्तर युग में पर्याप्त विकास हुआ। बच्चनजी की आत्मकथा 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर-फिर', 'बसेरे से दूर' एवं 'प्रवास की डायरी' चार खण्डों में प्रकाशित हुई। राहुल सांकृत्यायन की 'मेरी जीवनयात्रा', यशपाल की 'सिंहावलोक' जैसी आत्मकथाएँ महत्त्वपूर्ण हैं। जीवनियों के अंतर्गत अमृतराय की 'कलम का सिपाही', शरद्चंद्र के जीवन पर आधारित विष्णुप्रभाकर की 'आवारा मसीहा' जैसी जीवनकथाएँ लिखी गईं। रामविलास शर्मा-रचित 'निराला की साहित्य साधना' तीन खंडों में लिखी गई उत्कृष्ट जीवनी है।

रेखाचित्र की विधा की प्रतिष्ठा का श्रेय महादेवीजी को जाता है। 'अतीत के चलचित्र' एवं 'स्मृति की रेखाएँ' उनके उत्तम रेखाचित्र संग्रह हैं। महादेवीजी ने मित्रों एवं महापुरुषों के जीवन से संबद्ध संस्मरण भी लिखे। इनके अलावा बनारसीदास चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' रामवृक्ष बेनीपुरी आदि ने भी इस विधा में अच्छा काम किया। यात्रावृत्तांत लिखने वालों में राहुल सांकृत्यायन का प्रदान बहुत बड़ा है। उन्होंने अपने घुमक्कड़ जीवन के फल स्वरूप तिब्बत, चीन, यूरोप एवं रूस की यात्राओं से संबंधित कई ग्रंथ लिखे। अज्ञेयजी ने 'अरे यायावर रहेगा याद' तथा 'एक बूंद सहसा उछली' में अपनी यात्राओं का कवित्वपूर्ण वर्णन किया है। इनके अलावा सेठ गोविंददास, बेनीपुरीजी, यशपाल, विष्णु प्रभाकर आदि ने देश-विदेश की यात्राओं का विविध शैलियों में वर्णन किया है। कथा, डायरी एवं पत्रशैली का प्रयोग भी हुआ।

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का इतिहास भी महत्त्वपूर्ण है। इसका आरंभ भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग से ही हो चुका था। स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद हंस, प्रतीक, कल्पना, सारिका, धर्मयुग, दिनमान एवं नई कविता जैसी पत्रिकाओं ने युगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रतिबिंबित किया। वर्तमान समय में दस्तावेज, पहल, आलोचना, समकालीन साहित्य, वाक्, वाम जैसी महत्त्वपूर्ण पत्रिकाएँ गंभीरतापूर्वक अपना दायित्व निभा रही हैं।

उपसंहार : हिन्दी साहित्य का इतिहास अपने व्यापक फलक पर हिन्दी की उपभाषाओं और बोलियों का भी साहित्य है। खड़ी बोली तो पिछले सौ वर्ष से हिन्दी का पर्याय बनी है। यह साहित्य वास्तव में हमारा राष्ट्रीय साहित्य है। भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग माना गया है। आधुनिककाल में पद्य एवं गद्य दोनों में अनेक युग प्रवर्तक रचनाकारों ने महत्त्वपूर्ण रचनाएँ लिखकर इस साहित्य को ऊँचाई पर पहुँचाया है। कथा एवं शिल्प दोनों दृष्टियों से हिन्दी साहित्य भारतीय साहित्य का अभिन्न अंग कहा जा सकता है।

•